राजस्थान रा पीछोला

– तनसिंह
– लक्ष्मणसिंह

प्रकाशक :

श्री संघशक्ति प्रकाशन प्रन्यास
ए/8, तारा नगर, झोटवाड़ा,
जयपुर – 302 012
दूरभाष : 2466353, 2466387, 2466138

श्री क्षत्रिय युवक संघ ग्रन्थ माला का पुष्प

प्रथम संस्करण : 1945
षष्ठम संस्करण : 2013

मूल्य : पन्द्रह रुपये

मुद्रक :

गजेन्द्र प्रिन्टर्स,
सांगों का मन्दिर, सांगों का रास्ता,
किशनपोल बाजार, जयपुर
दूरभाष : 2313462

विषयानुक्रमणिका

- पीछोला 02
- जेठवै रा पीछोला 05
- नागजी रा पीछोला 14
- महाराज सर गंगासिंह जी रा पीछोला 20
- बैरीसालसिंह जी रा पीछोला 23
- बाघजी रा पीछोला 25
- छूटक पीछोला 35

समर्पण

उस आत्मा की अमर यादगार में
जिसके विरह से उत्पन्न
हृदय में असंख्य मूक
पीछोले उठ–उठ कर
भीतर ही
बैठ गये थे।

– तनसिंह
– लक्ष्मणसिंह

दो शब्द

इस पुस्तिका के निर्माण में 'क्षात्र-धर्म' अजमेर और 'क्षात्र-धर्म सन्देश' जयपुर में हमें उल्लेखनीय सहायता मिली है। शिवसिंहजी चोयल ने हमें नागजी विषयक कुछ सामग्री दी जिसके लिये हमें उनका आभारी रहना पड़ेगा। कई पीछोले हमने अन्य कई लोगों से संग्रहित किये हैं। उन सबका नाम यहाँ प्रकट करना कठिन है फिर भी महता और विरधा ढाढी का उल्लेख आवश्यक है। साहित्यरत्न पं. पतराम गौड़ 'विशारद' एम.ए. ने हस्तलिखित प्रति को पढ़कर आवश्यक संशोधन भी किये जिसके लिये उन्हें धन्यवाद देना आवश्यक है।

पुस्तक के विषय में हमें कुछ भी नहीं कहना है। उसके विषय में तो कहना पाठकों का कार्य है। जो त्रुटियाँ पाठकों की दृष्टि में खटकेंगी उन्हें हम आगामी संस्करण में ठीक करने का प्रयत्न करेंगे।

- तनसिंह बाड़मेर

- लक्ष्मणसिंह अडूका

पीछोला

साहित्य के बहु-संख्यक विद्वानों का मत है, कि राजस्थानी साहित्य वीर रस का साहित्य है। विद्वानों के इस मत का न तो हम खण्डन करते हैं और न अनुमोदन ही। मानते हैं, कि राजस्थानी साहित्य में वीर रस की प्रचुरता है, फिर भी उसे केवल वीर रस का ही साहित्य मानना हमारी भूल है। क्योंकि जहाँ हमें इस साहित्य में वीर रस का विशद वर्णन प्राप्त होता है, वहाँ शृंगार, करुण, वात्सल्य इत्यादि अन्य सभी रसों का वर्णन भी पर्याप्त मात्रा में प्राप्त होता है।

करुण रस साहित्य का प्राण माना जाता है। प्राय: इसका प्रयोग दुर्लभ है। लेकिन पीछोला साहित्य की तो नींव ही करुण रस के विस्तृत क्षेत्र पर है। वह उस रस का एक अङ्ग है। प्रस्तुत पुस्तिका से करुण रस का रसास्वादन करके हम राजस्थानी साहित्य की सम्पन्नता प्रमाणित करने में समर्थ हो सकते हैं।

अंग्रेजी में पीछोलों को *Elegy* कहते हैं और उर्दू में मरसिया। मृत्यु के उपरान्त मृतात्मा के प्रति उमड़ते हुए करुण उद्‌गारों के काव्य रूप को ही पीछोला कहते हैं। पीछोले मृत्यु की ओट में गये प्रेमी की मधुर स्मृति पर श्रद्धा व प्रेम के भाव-प्रसून हैं। इसके अन्दर वे आहें हैं जिनके लिये -

आह करूँ तो जग जळै, जङ्गळ भी जळ जाय।
पापी हिऊंड़ो नी जळै, जिण में आह समाय।।

प्रयुक्त हो सकता है। पीछोला की आह जग व जङ्गल जला देने की क्षमता रखती है, फिर मनुष्य की तो बात ही क्या? उस पर तो 'तन मन धुनत शरीर' की उक्ति भली-भाँति लागू हो सकती है। दु:खी ह्रदय को मसोस डालने और सुलगती हुई पीड़ा में बारूद का काम करने की शक्ति पीछोलों में है। इनके अन्दर वह बेचैनी है जिसके लिये एक राजस्थानी ह्रदय कहता है -

जागाँ तोई जँप नहीं, सूआँ तो सूळीह।
पंडड़ा पर पूळीह (तूँ) सुळगा गयो साजनिया।।

राजस्थानी के जितने भी पीछोले हैं, वे सभी उन्हीं द्वारा कहे गये हैं, जिन्होंने संसार से प्रयाण करते हुए अपने हृदय के टुकड़े के विरह का दुख सहा है। जेठवा के लिये ऊजळी, बैरीसालसिंह जी के लिये रामलालजी और नागजी के लिये नागवन्ती–इस प्रकार जिन्होंने जो पीछोले बनाये हैं वे हृदय के सच्चे उद्गार थे। वह कवि जो खस की टट्टियों के पीछे बैठा हुआ है, फाउण्टेन पेन से उन श्रम–जीवियों का वर्णन उतनी योग्यता से नहीं कर सकता जितना एक किसान स्वयं कवि की प्रतिभा पाकर कर सकता है। कविता के लिये अनुभूति की अत्यन्त आवश्यकता है। अनुभूतिविहीन कविता साहित्य की सबसे बड़ी निर्लज्जता है। किन्तु राजस्थानी के पीछोला रचयिता तो स्वयं उन हूकों का अनुभव कर चुके हैं, जिनके लिये आशानन्दजी ने कहा है –

हूक कळेजै माँय, दाटूँ पण दूणी दगै।
धूँधलिया धड़ माँय, बरळाँ उठै बाघजी।।

अन्तिम श्वासों को लेता हुआ मनुष्य मृत्यु शैया के चारों ओर खड़े हुए आत्मीयों से यही चाहता है कि उसकी मृत्यु से विश्व दुखित हो जाए। *Thomas gray's Elegy written in a country church-yard* में देखिये –

On some found brest the parting soul relies.
Some pious drops the closing eye requires.

तात्पर्य यह है कि पीछोलों की चाह न केवल विरही के ही हृदय में है, बल्कि संसार से प्रयाण करते हुए प्रत्येक मनुष्य के हृदय में रहा करती है। रवीन्द्रनाथ ठाकुर की 'स्वर्ग हइते विदा' पढिये। हम तो यही कहेंगे कि वह स्वर्गलोक ही क्या जहाँ मृत्यु के उपरान्त पीछोले न कहे जायँ। वह लोक, जिसमें बिछुड़ते हुए के प्रति उमड़ने वाले सहज और भावुक उद्गारों की कमी रहे, हम तो जानते हैं मृत्युलोक से भी गया बीता है।

राजस्थानी में एक लोकोक्ति है ''उए रे लारे तो रोवण वाळो ई कोई कोनी रयो'' अर्थात् उसके पीछे तो कोई रोने वाला भी न रहा। इस लोकोक्ति से आप उस मृतात्मा के दुर्भाग्य का अनुमान लगा सकते हैं, जिसके पीछे कोई रोने वाला भी न बचा हो। कहने का अभिप्राय यह है कि

पीछोलों की महत्ता हर एक के हृदय में होती है उन्हें हम निरा 'कागज काला' ही नहीं कह सकते। यह स्थायी और युग–युग का साहित्य है। इसीलिए इस पुस्तक का रसास्वादन राजस्थानी प्रेमियों तक ही सीमित न रखकर, हिन्दी में भावार्थ और टिप्पणी देकर हिन्दी के साहित्यिकों तक पहुँचाने का प्रयत्न किया गया है।

हिन्दी साहित्य में पीछोला साहित्य की विशेष रूप से कमी है। हम समझते हैं इस प्रकार की कोई पुस्तक हिन्दी साहित्य में शायद ही प्राप्त होगी। साहित्य प्रेमियों को यह बात खटकनी चाहिये। किञ्चित व्यक्तियों की स्मृति में दो चार शोकोद्गार हों तो भले ही लेकिन व्यवस्थित रूप से कोई पुस्तक के रूप में पीछोला साहित्य बहुत कम प्राप्त होगा। इसलिये इस पुस्तक को साहित्य में सम्मिलित करने की धृष्टता के लिये क्षमा मांगने की हमें कोई आवश्यकता नहीं।

❁ ❁ ❁

प्रकरण : एक

जेठवै रा पीछोला

प्रस्तुत कथा को ऐतिहासिक की अपेक्षा साहित्यिक महत्त्व देना उपयुक्त है। करीब 11वीं–12वीं शताब्दी में हालामण रियासत की धूमली नामक नगरी का राजा भाण जेठवा था। उसके राज्यान्तर्गत अमरा नामक एक गरीब चारण रहता था जिसकी कन्या ऊजळी शीघ्र विवाह न होने की वजह से बीस वर्ष की आयु तक कुंवारी ही रही। अकस्मात् एक दिन भाण के पुत्र मेहा जेठवा और अमरा की पुत्री उजळी के बीच प्रेम सम्बन्ध स्थापित हो गया। प्रेम की जड़ क्रमश: दृढ़ होती गई। विवाह की वार्ता चलने पर उसे चारणी जानकर विवाह प्रस्ताव को अस्वीकार करते हुए मेहा ने कहा कि चारणों और राजपूतों में भाई–भाई का सम्बन्ध रहता है। मैं तुमसे विवाह करके उस सम्बन्ध को तोड़ नहीं सकता।

उक्त विवाहार्थ अमरा ने भी अपनी सम्मति दे दी थी लेकिन वह भी मेहा को न डिगा सका। जेठवा के ह्रदय में मर्यादा प्रेम से बढ़ी हुई थी लेकिन ऊजळी का जीवन शून्य हो गया।

थोड़े दिनों के बाद जेठवा की मृत्यु हो गई। रही सही आशा का भी अन्त हो गया। ऊजळी अपने प्रेम की विकल अग्नि को दबाकर ही रह गई। इस दबी हुई अग्नि को उसने सोरठे बनाकर उनमें व्यक्त कर दिया। जेठवा को सम्बोधित जितने भी सोरठे हैं वे ऊजळी के बनाये हुए हैं। इन सोरठों में ऊजळी के विकल–प्रेम और करुणोत्पादक जीवन की ह्रदय स्पर्शी आहें छिपी हैं। कुछ लोग इसी को और ढंग से कहते हैं। लेकिन सोरठों को जब ध्यान की दृष्टि से देखते हैं तो वे पीछोले ही प्रतीत होते हैं।

कुछ पीछोलों के उदाहरण यहाँ उद्धृत किये जाते हैं –

जेठा घड़ी न जाय, (म्हारो) जमारो कोंकर जावसी।
(मों) बिलखतड़ी वीहाय, (तूं) जोगण करग्यो जेठवा।।

जिसके बिना एक प्रहर भी नहीं बीतता उसी के बिना मेरा जीवन कैसे बीतेगा। मुझ बिलखती हुई अबला को छोड़कर तू मुझे योगिन बना

गया।

'जोगण करग्यो' में एक उलाहना भरी ह्रदय की मौन चीत्कार छिपी है। अब मेरा जीवन कैसे चलेगा। यह प्रश्न क्या दु:खी ह्रदय में नहीं उठता? अपनी अमूल्य निधि को खोकर 'बिलखतड़ी वीहाय' कहकर इस बेबसी भरे हाहाकार को 'जोगण करग्यो' कहकर धीरे से निकाल देती है।

टोळी सूं टळतांह हिरणां मन माठा हुवै।
बालम बीछड़तांह जीवै किण विध जेठवा।।

टोली के बिछुड़े हुए हरिनों के भी मन उन्मत्त हो जाते हैं फिर प्रियतम के बिछुड़ने पर प्रियतमा किस प्रकार जीवित रह सकती है।

प्रिय वस्तु का नाश संसार से विरक्ति का उत्पादन करता है। उस वस्तु बिना जीवन के सब सुख फीके लगते हैं। विशेषत: हिन्दू नारी के लिये पति से बढ़कर जीवन में कोई भी प्रिय वस्तु नहीं और जब पति की ही मृत्यु हो जाती है तो नारी भी 'जीवै किण विध जेठवा' कहने के अलावा और कह ही क्या सकती है? जब हरिन जैसे पशु भी विरह की घड़ी आते देख उन्मत्त हो जाते हैं फिर कोमल भावनाओं वाली नारी पति बिना किस प्रकार जीवित रह सकती है?

जेठा थारै लार, (म्हे) धोळा वस्तर पैरिया।
(ली) माळा चनणरी हाथ, जपती फिरूँ रे जेठवा।।

हे जेठवा तेरे पीछे (मृत्यु के बाद) मैंने श्वेत वस्त्र धारण कर लिए हैं और चन्दन की माला हाथ में लेकर मैं जप करती फिरती हूँ।

पति के मरने पर रङ्ग बिरङ्गे श्रृंगार की अपेक्षा हिन्दू नारी को 'ली माला चरण री हाथ, जपती फिरूँ रे जेठवा' ही कहना इष्ट है। पति से त्यक्त अभागिनी ऊजळी के ह्रदय के करुण रुदन की दुखद हूक इस सोरठे में अद्‌भुत रूप से व्यक्त है।

आवै और अनेक, जाँ पर मन जावै नहीं।
दीसै तों बिन देख, जागां सूनी जेठवा।।

अन्य कई आते हैं लेकिन उन पर मन नहीं जाता। हे जेठवा ! तुझे न देखकर तेरी जगह शून्य लगती है।

राजस्थानी में एक कहावत है 'भाई री भीड़ भुआ सूं नी भागै'

अर्थात् भाई की कमी फूफी से पूरी नहीं होती। यही हाल है जेठवे के चले जाने पर ऊजळी का। यों तो संसार में आवागमन का तंत्र बना रहेगा लेकिन उससे क्या? जेठवे के सदृश ऊजळी को कोई नहीं मिल सकेगा। प्रिय वस्तु बीते हुए क्षण की भाँति जब हाथ से निकल जाती है तो पुन: प्राप्त नहीं होती। ऊजळी का हृदय भी कह उठा–'दीसै तों बिन देख, जागां सूनी जेठवा'। हृदय की शून्यता का इस सोरठे में कितना यथार्थ शाब्दिक प्रतिबिम्ब प्रकट किया गया है।

ताळा सजड़ जड़ेह, कूँची ले कीनै गयो।
खुलसी तो आयेह (कै) जड़िया रहसी जेठवा।।

मजबूत ताले जड़कर उसकी चाभी लेकर तू कहाँ गया? यह ताले यदि खुलेंगे तो तेरे आने पर ही, नहीं तो यों ही बन्द रहेंगे।

'कीनै गयो' में भावुक राजस्थानी हृदय की कितनी जिज्ञासापूर्ण तड़फ है। जानते हुए भी पूछ उठती है 'किधर गया'। 'कै जड़िया रहसी जेठवा' में दु:खी हृदय का कितना दयनीय निश्चय है।

जग में जोड़ी दोय, चकवै नै सारस तणी।
तीजी मिळी न कोय, जोती हारी जेठवा।।

संसार में दो ही जोड़ी हैं–चकवे और सारस की। लेकिन खोज–खोज कर हारी तो भी तीसरी जोड़ी न मिली।

ऊजळी का विश्वास था कि जेठवा और मेरी जोड़ी तीसरी जोड़ी है लेकिन उस जोड़ी के टूटने पर और जोड़ी कहाँ प्राप्त हो सकती है?

चकवा सारस वाण, नारी नेह तीनूं निरख।
जीणों मुसकल जाण, जोड़ो बिछड्याँ जेठवा।।

चकवे को, सारस के क्रन्दन को और नारी के नेह, इन तीनों को देखकर यही प्रमाणित होता है कि जोड़ी के बिछुड़ने पर जीना कठिन है।

मृत्यु को प्राप्त हुए प्रेमी के लिये जीवित प्रेमी का सबसे बड़ा बल अपनी ही मृत्यु है। यहाँ तक कि साधारण दु:ख की अवस्था में भी मनुष्य आत्महत्या के लिये प्रस्तुत हो जाते हैं। विशेषत: एक हिन्दू नारी का विधवा होना उसके जीवन का सबसे बड़ा दु:खप्रद क्षण है। उस क्षण में यदि ऊजळी जैसी भावुक प्रेमिका जेठवा जैसे प्रेमी के लिए 'जीणों मुसकल जाण' कह दे तो कोई अतिशयोक्ति नहीं अपितु यथार्थता की चरम सीमा है। जीवन की अनुभूति पर करुणा का आवरण चढ़ाकर ऊजळी ने अपने दु:खी जीवन का कितना मर्मस्पर्शी चित्र खींचा है।

पाबासर पैसेह हंसा भेळा नी हुआ।
बुगलां संग बैसेह, जूण गमाई जेठवा।।

संसार रूपी मान सरोवर में रहकर जेठवा रूपी हँसों का संसर्ग प्राप्त न हुआ और बगुलों (निकृष्ट प्रेमियों) के संग रहकर अपना जीवन नष्ट कर दिया।

जेठवे के बिना ऊजळी का संसार शून्य है। वहाँ के लोग ऊजळी को बगुले लगते हैं। सत्य भी तो है कि गरीब का आश्रय कुटिया है। उसके लिये गगनस्पर्शी राजप्रसाद और रम्य आश्रम पशुओं के निवास स्थान हैं। उसका उनसे कोई प्रयोजन भी तो नहीं।

वै दीसै असवार घुड़लाँ री घूमर कियाँ।
अबला रो आधार, जको न दीसै जेठवो।।

घोड़ों को घुमाते हुए कई अश्वसवार दीखते हैं लेकिन मुझ अबला का आधार जेठवा नहीं दिखाई देता।

जिनका हृदय टूट जाता है उनके लिये संसार आबाद होते हुए भी शून्य है। यों तो घोड़ों के सवार बहुत मिलेंगे लेकिन अबला ऊजळी का आधार अब नहीं आने का। किसी प्रिय की मृत्यु पर हमारे हृदय में जो वैराग्यपूर्ण निराशा आती है उसे ऊजळी ने 'जको न दीसै' जैसे मृदुल लेकिन तीक्ष्ण शब्दों में प्रकट किया है।

अंगूठै री आग लोभी लगवाड़े गयो।
सूनी सारी रात, जँप न पड़ी रे जेठवा।।

हे लोभी! तू अंगूठे की आग लगाकर चला गया। मैं रात भर रोई, और हे जेठवा ! मुझे लेश मात्र भी नींद नहीं आई।

ऊजळी का सम्बोधन 'लोभी' बहुत मौके का है। विशेषत: राजस्थानी तो लोभीड़े शब्द को बहुत मधुर मानते हैं। फिर 'लगवाड़े गयो' में कितनी वेदना है। एक बेबस हृदय बिछुड़ते हुए के प्रति रोने के सिवाय और क्या कर सकता है?

बहता जळ छोडेह, पुसली भर पियो नहीं।
नैनकड़े नाडेह, जीव न धापै जेठवा।।

चलते जल को छोड़कर उससे चुल्लू भर भी पानी नहीं पिया, अब इन छोटे–छोटे तालाबों से पिपासा नहीं बुझती।

ऊजळी अपने प्रियतम की महानता किस विशेषता से अभिव्यञ्जित करती है–जेठवा बहता हुआ पवित्र जल था और संसार के अन्य जन छोटे गड्ढे हैं–ऊजळी की इच्छा थी कि जेठवा रूपी बहते जल को प्राप्त करूँ, लेकिन बहने वाला जल जब बह गया तो अब गन्दे जलाशयों का पानी किस भाँति पी सकती थी। पाठक देखेंगे कि इस सोरठे में वही भाव है जो सती सावित्री द्वारा नारद व उसके पिता के सत्यवान से दूसरा वर चुनो कहने पर प्रदर्शित किया गया था।

जळ पीधो जाडेह, पाबासर रै पावटे।
नैनकिये नाडेह, जीव न धापै जेठवा।।

मानसरोवर के कगारों पर रहकर निर्मल जल पिया था तो अब छोटे–छोटे जलाशयों के जल से तृप्ति नहीं होती।

यह भी उपर्युक्त दोहे का समानार्थी है। 'पीधो' में बीते हुए सुखों की एक छाया है और 'न धापे' में वर्तमान की करुणोत्पादक अवस्था का चित्रण। एक ही सोरठे में भूतकाल की रंगरेलियों एवं वर्तमान की चीत्कारों का कैसा अपूर्व मिश्रण है?

ईण्डा अनल तणाह, वन माळै मूकी गयो।
उर अर पांख विनाह, पाकै किण विध जेठवा।।

पक्षी अपने अण्डे वन के किसी घोंसले में छोड़कर चला गया। हृदय और आँखों की गर्मी बिना वे अण्डे किस प्रकार पक सकते हैं?

जेठवा प्रेम का अंकुर बोकर चला गया, वे अंकुर वांछित खाद्य व पानी बिना किस प्रकार फूल सकते हैं? 'वन माळै मूकी गयो' में छिपी तड़फ पाठकों के हृदय को बेध डालती है।

जंजर जड़िया जाय, आघै जाये उर महें।
कूंची कौण कराँह, जड़िया जाते जेठवै।।

हृदय के अन्दर आगे जाकर जो जंजीरें कस दी गई हैं उनके जेठवा जाते समय ताले भी लगा गया अत: और किससे चाबी ला सकती हूँ?

यह है ऊजळी के हृदय का हृदयविदारक हाहाकार ! सहृदय पाठक इसे पढ़कर ऊजळी के हृदय की थाह पा सकते हैं और साथ ही साथ यह भी ज्ञात कर सकते हैं कि राजस्थानी लोक साहित्य भी कितना सम्पन्न है।

संसार के श्रेष्ठ साहित्यों में ही ऐसा वर्णन प्राप्त हो सकता है अन्य जगह नहीं। गुजराती साहित्य में भी जेठवा को सम्बोधित कई बड़े ललित और करुण सोरठे हैं उन्हें पाठकों के अवलोकनार्थ हम यहाँ उद्धृत करते हैं–

अमरा काजानी ऊजळी, भाण जेठवा नो नेह।
जे दिनां सूतेल साथेर, ते दिनों बांधेल नेह।।
ठांगे रेती ठेट, आघै पण ओरे नहीं।
आव्युँ बरडे बेट, पांजर दाणे पाणिये।।
जमी ढमढोळे, संसारे सोधी वळी।
मननो पारख मे, भेदू मिळियो भाणनो।।
फरताँ आवेळ फूल, माळी कोई मिळियो नहीं।
माख सुँ जाणै मूल, भमर पाखी भाणना।।
जूना, तजीनै नीर, नवा निवाण निहालवां।
फरताँ कुवाँ फेर, जळ एनु ए जेठवा।।
मे मे करतां अमे, मे नाँ तो मननां नहिं।
वाळा पल्या वदेश, विसारी वेणुना धणी।।
ताण्यु दीये तमे, जेठवा जीवाये नहीं।
तारा आँगना अमें, भुख्या छे अ भाणना।।
ते आव्यो ऊमा धणी, तुँ ग्ये गळे झलाण।
मे थानै मेमान, बे घड़ी बरड़ाना धणी।।
मे तू तो मेह, वूठै वनस्पति वळै।
झाकळ ने जामेह, भोम नो पाकै भाणना।।
मोटे पणगे मेह, आय्यो धरनी धरपतो।
अम पातीनों अेह, झाकळ न वरस्यो जेठवा।।
गरना डूंगर जागिया, फरक्या वेणु वन्न।
मेह तमारूँ मन बकोल थ्यु बरडा धणी।।
दाबलना दाझेल, परणगे पाळविअें नहीं।
अेक बार अेलो करे, वन काळे वेणु–धणी।।
नाणे दाणों नव मळे, नारी छांडे नेह।
(कां) वीजलिअे वलूंभियो, (कां) माँदों पड़यो मेह।।

बारह मासा:

कारतक महिना माँय, सौने शियाळो सांभरै।
टाढ़डीयुँ तन माय, ओढण दे आभपरा धणी।
मगशर मां मानव तणां, सहुना एकज श्वास।
(ई) बातुं नो विश्वास, जाण्यु करशे जेठवो।।
पोष महिनानी प्रीत, जाण्यु करशे जेठवो।
राणा राखो रीत, बोल दई बरडा–धणी।
माह महिना माँय, ढोल त्रंबालु ध्रूशके।
लगन चोखा ले आय, वधायुँ वेणुना धणी।।
फागण महिने फूल, केशुडां कोल्यां घणा।
(एनां) मोंघा करजो मूल, आनीने आभपरा धणी।
चतर माँ चित माँय, कोलामण वळै कारमी।
(एनो) उलट घणी अंगमाँय, आवो आभपरा धणी।।
वैशाखे वन माँय, आंबे साखूं ऊतरै।
तम प्होणी करमाय, विजोगे वेणुना धणी।
जेठ वसमो जाय, धर सूकी धोरी तणी।
पूछल पोरा खाय, जीवन विनाना जेठवा।।
आषाढ कोराडो उनर्यो, मैयल पतल्यो मे।
दल ने टाढक देय, जीवन लांभे जेठवा।
श्रावण महीने साबदो, जेम तेम काढ्यो जे।
तम वण मरशुं मे, भेलाँ राखो भाणना।।
हाथी पूछल्यो होय, (एने) केम करी उठाडीये।
जेठवा विचारी जौय, भादरयो जाय भाणना।।
आसो महिनासी अमे, राणा लालच राखिअे।
भोडियुं सर्युं तमे जीप्युं नो जाय जेठवा।।

✻ ✻ ✻

मा तवाण तुं मेह, तारा वेट्र्याँ नहिं वरतीअे।
(एल) सगपग ने स्नेह, तारे ताण्ये तूटशे।।
वण सगे वण सागवे, वण नातरीअे नेह।
वण मावतरे जीवीअे तुं वण मरीहु मेह।।

आभपरे आवे ऊजळी, चारण भूखी छेह।
जाऊं किसे हूं जेठवा, मत मुंझायल मेह।।
बाडी माथे वाललां, भोलुं माथे मेह।
दुखनी दाझेल देह, भोठां पड़ीअे भाणना।।
मुंझव मातु मे, ऊंडां जल मां उतारी ने।
मोढुं देखाउ मे भोठप म दे भाणना।।
परबेथां पाछां वळयां, तरसा झाझी छे।
तुं वण वाला में, अगन्युं क्यां जइ ओळ्युं?
उनाळाना अमें लांबा दि लेवाय नै।
तोण्यु दई ने तमे जीवतां राखो जेठवा।।
बापैयो बीजे पालर वण चींवै नहीं।
समदर भरियो छेह, (तोय) जळ नो बोटे जेठवा।।
माथै मंडाणो मेह, वरा मेली ने बरसशे।
बरस्यो जई वदेश, ऊनाळो रीयो ऊजळी।।
मे मे करतां अमे, बापैयो घोडें बोलियो।
नाजर विनानू नेह, (ह) बाधै नै बरड़ा धणी।।
आव्यां आशा करे, निराशा एने तो वालिये।
तब डुक टुंकारे, भोंठप झाझी भाणना।
वरमंड खोटां वादलां, वाये टाढ़ा वा।
मे नुं कोइ न मानशो, (मेअे) माया बाप ने मा।।
चारण एटला देव, जोगमाया करी जाणिअे।
लोहिना खपर खपेह, (तो) बूडे बरडानो धणी।।
तमे छोरू चारण तणा, लाजूं लोपाय नै।
मन बगाडु अमें, (तो) आभपरो लाजै उजळी।।
कण ने दाणा कोय, भण्य तो दऊं गाडां भरी।
हेये भूखूं होय, (तो) आभपरे आये ऊजळी।।
आयां थी जाने ऊजळी, नवे नगर कर नेह।
जाने रावळ जाम ने, छोगालो न दे छेह।।
साकर ने सादेह, बोलावतो बरडाना धणी।
(आज) कुचा काऊं काढेह, जाते दाड़े जेठवा।।
छाणे वीछी चडाविअे, टाकर मारे तेह।
मागी लीधो मेह, वरडाना विलेसर कने।।

आवडियुं अमे जेठी राण जाणेल नहीं।
(नीकर) पियर पग ढांके, बेसत बरडाना धणी।।
छेतरी ने दीधा छेह, हाळी तल हलवां थियां।
मनमां नोतुं मेह, (तो) भाणना नाकारो भलो।
मनमां होतुं मेह, (तो) नाकारो कांन मोकल्यो।
लाजूं अमणी लेह, भोंठां पाड्या भाणना।।
परदेसी नी पीड़ जेठी राण जाणी नहीं।
ताँणी ने मारया तीर, भाथे भरीनै भाणना।।
ओसियाळा अमे, टोडा भळ टळिया नहीं।
मेणी आत राख्या मे, जामो कामी जेठवा।।
बालोतीयानां बलेल, (अमे) थानु मां ठरियां नहिं।
तर छोड्या तमे, जामो कामा जेठवा।।
ताव मां माणस जेण, आघां ठेलै अन्न ने।
मेने लागी एम, अफीण रोखी ऊजळी।
अभडाणा अमे, मुसलमान मलयो नहीं।
छेली छांट तमेह, जलनी नांखो जेठवा।।
खीमरा खारो देस, मीठा बोला मानवी।
नगणां सूं शो नेह, बोल्यो नै बरडा धणी।।
काचो घड़ो कुंभार, अणजाण्ये में उपाडियो।
भवनो भांगणहार, जेठा राण जाणी नहीं।
आभपरे थी अूछळयां जण मां दीधो झोक।
सरगापर ने चोक, भेळा थाशुं भाणना।।
मरीग्यो हत मे (तो) दलमांथी दझण्युं टळत।
जीवताँ माणस जे (अेने) बालो कां बरडा धणी।।
कल–कल करशे काग, धुमली नो घुमट जशे।
लागो वधती आग, राणा तारा राज माँ।।
जळ माँ डेडा जेर दबाणां थकां डसे।
(पण) वशीअरनां वेडेल, जीवे न के दि' जेठवा।।

प्रस्तुत कथा उपर्युक्त हमारी कथित कथा से कहीं–कहीं भिन्न है लेकिन हृदय के सच्चे उद्‌गारों की कोई भी पाठक अवहेलना नहीं कर सकता।

प्रकरण : दो

नागजी रा पीछोला

नागजी बूंदी निवासी थे। बाल्यावस्था में ही माता का देहान्त हो जाने से नागजी के पालन–पोषण का भार उनके सबसे बड़े भाई धौळजी की पत्नी पर पड़ा। नागजी अपने चारों भाइयों में सबसे छोटे थे। किसी कारण वश, संभवत: अकाल के कारण धौळजी अपनी पत्नी सहित घोड़ों और अन्य पशुओं को लेकर कोटा की ओर चले। नागजी कहीं गये हुए थे। लौटने पर धौळजी के प्रस्थान का समाचार सुना तो वे भी उनके पीछे हो लिये। बात यह थी कि नागजी धौळजी की पत्नी को माता से बढ़कर मानते थे और उसके बिना वे भोजन नहीं करते थे।

तीनों कोटा के समीपवर्ती एक ग्राम में गये जहाँ का परिचय उन्हें पहले ही प्राप्त था। उस ग्राम में विशेषता यह थी कि वहाँ से बाहर जाने के लिये एक ही घाटी थी। चारों ओर से पर्वतावृत्त था। एक दिन एक डाकू नागजी की घोड़ियाँ चुरा ले गया। नागजी ने उसे पकड़ लिया और उस दिन से वे उस घाटी पर ही घोड़ियों की रक्षा हेतु रहने लगे। उनकी भौजाई हमेशा उनके लिये भोजन लाया करती थी। एक दिन उसने कहा, नागजी! लो हार जीत की चौपड़ खेलें। नागजी ने कहा अपने पास है ही क्या सो हार जीत करें? तब उसने कहा यदि तुम जीत गये तो मैं अपनी बहन 'आभलदे' का विवाह तुमसे कर दूंगी और यदि तुम हार गये तो मैं तुम्हें भोजन कराने न आऊँगी। इस पर नागजी ने कहा कि मैं तुझे अपनी माँ समझ कर तेरे हाथ के सिवाय और किसी का भोजन नहीं करता था और यदि तुम ऐसा ही कहती हो तो मुझे तुम्हारी कोई चाह नहीं रही। रही बात तुम्हारी बहिन की सो जैसी तुम वैसी तुम्हारी बहिन होगी। भौजाई ने ताना मारा कि तुम ऐसी कौन–सी पद्मिनी को लावोगे। नागजी ने कहा आभलदे से तो सुन्दर ही लाऊँगा। तब भौजाई ने प्रण किया कि तुम ऐसी पा भी लोगे तो विवाह उसका तुमसे मैं करवा दूंगी। अस्तु।

श्रावणी तीज थी। नागजी ने सोचा चलो आज शहर में जाकर त्योहार का उत्सव देख आवें। घोड़े पर जा ही रहे थे कि एक वाटिका में उन्हें मधुर स्वर सुनाई दिया। वाटिका में घोड़े को कुदा कर घुसे। देखते हैं कि एक अति रमणीय सुन्दरी झूल रही है। दो चार बातें हुई और नागजी वापिस आये। भाभी से कहा ''मैंने उसे पा लिया है। अब बात है तुम्हारे वचन की।'' उन्होंने कहा वह सुन्दरी तो अपने यजमानों की ही कन्या सुगनी है। उसी समय वह उनके महल की ओर गई और कहती गई कि तुम ब्राह्मण का प्रबन्ध कर रखना मैं उसे लाती हूँ। अन्त:पुर में जाकर उसने सुगनी को देखा और अपने गले का हार उसको भेंट किया। जाते समय कहा कि आज तो तीज है सो मैं सुगना को अपने डेरे ले जाऊँगी। उन लोगों ने मान लिया। वे दोनों बजाय डेरे में जाने के नागजी के यहाँ गये और विवाह करवा लिया। सुगना और नागजी का बहुत घनिष्ट प्रेम हो गया लेकिन विवाह की बात उसके माता-पिता के पास न पहुँच सकी। फलत: सुगना की शादी दूसरी जगह पक्की हो गई। मिलन के सुभीते के लिये नागजी ने सुगना के महल तक सुरंग खोद ली थी जिससे वे नित्य मिल लिया करते थे।

आखिर विवाह का समय समीप आ गया। पाणिग्रहण के दिन नागजी नाइन का भेष धारण कर वहाँ आये और सुगना (जिसे नागवन्ती भी कहते हैं) के पास विलाप करने लगे। विलाप जोर-जोर से तो कर नहीं सकते थे अत: आँसू बहा रहे थे। इस पर नागवन्ती (सुगना) ने कहा –

नागजी रे झुरे-झुरे मत रोय, नार पराई कारणै।
नागजी रे भीजै साळूडारी कोर, रंग रा रेळा उतरै।
नागजी रे थे मोती म्हे लाल, अेकण डोरे पोविया।

अरे नागजी ! पराई स्त्री के लिये इस प्रकार अधीर हो-होकर मत रो! शाल का किनारा भीगा जा रहा है और (आँसुओं के पानी से) रंग की धाराएँ बह रही हैं। हे नागजी तुम मोती हो और मैं लाल हूँ। हम तो एक ही डोरे (प्रेम सूत्र) में बँधे हैं। फिर ऐसे अधीर होने से क्या लाभ?

इस प्रकार नागजी को कुछ धीरज हुआ लेकिन नागजी के वेष को देखकर नारी हृदय की सहज भावनायें जागृत हो गई और धिक्कारने के रूप में कहा –

''नाई वणग्यो नागजी, वणग्यो जात कमीण''

प्रेमिका का इतना अमोघ अस्त्र नागजी जैसे दीवाने प्रेमियों के हृदय से कैसे चूक सकता था। बड़ी-बड़ी तलवारों के वार सहन करने वाले नागजी इस आघात को न सह सके और छटपटाते हुए डेरे में आकर दरवाजे बन्द कर कटार खा ली। उधर नागवन्ती भी कहते तो कह गई लेकिन वह तो होना था सो हो गया। वह पेट दर्द का बहाना बनाकर सो गई। उसके चीर से वर की परिक्रमा समाप्त हुई। धौळजी की पत्नी नागवन्ती के पास गई और पूछा तो कहा कि नागजी रुष्ट होकर चले गये हैं। दोनों सुरंग के रास्ते से नागजी के पास पहुँची और दरवाजा खटखटाया लेकिन कोई उत्तर न मिला। आखिर नागवन्ती ने उलाहना और प्रेम भरे शब्दों में कहा-

वतळावै जद वाम, वतळायाँ बोलो नहीं।
कदयक पड़ियाँ काम, न्होरा करस्यो नागजी।।

जब कुछ भी उत्तर न मिला तो दरवाजा तोड़कर वे दोनों भीतर घुसी। दृश्य देखकर नागवन्ती का हृदय बैठ गया। अभागिनी नारी के लिये उस समय रोने के सिवाय और बचा ही क्या था। वह वापिस घर को आई। नागजी की मृत्यु का समाचार धौळजी और सब लोगों के पास पहुँच गया। आत्मीय के निधन के कारण नागवन्ती के विवाह का आनन्द फीका पड़ गया अत: भोर होते ही बरात को विदा कर दिया। प्रात:काल जब नागजी का शव लेकर लोग बढ़े उस समय नागवन्ती की बरात भी आगे-आगे जा रही थी। नागवन्ती के रथ के पीछे नागजी का शव ले जाया जा रहा था। धौळजी को नागजी की मृत्यु का रहस्य विदित हो गया था, उन्होंने अभागे प्रेमी की करुणावस्था और नागवन्ती के धोखे पर व्यंग-सा कसते हुए कहा –

नागा न हेला नेह, जण तण सूं कीजै नहीं।
(लीजे) आगलड़ा रो छेह, आप तणो दीजे नहीं।।

इस पर नागवन्ती के हृदय का सोया हुआ प्रेम रो उठा। आत्मा ने मन की कायरता पर विद्रोह खड़ा किया। धौळजी को उत्तर दिया-

हिवड़ै धीरज राख, पळसेड़ा मारे मती।
सती होऊंली साथ, भाई थारै धौळजी।।

धौळजी ने कहा–यदि सती हो जाएगी तो नागजी की मृत्यु का कोई धोखा ही नहीं। घाटी से निकल कर नागवन्ती ने अपने प्रेमी नागजी की चिता देखी। एक–एक कर बीती हुई बातें आंखों के आगे से निकल गई। सारथी को कहा–रथ रोको। उतरकर वह चिता पर बैठ गई और नागजी के शव को गोद में ले लिया। भला सतीत्व के भयङ्कर प्रबाल में उबलती हुई नागवन्ती को सती होने से कौन रोक सकता था। अस्तु –

नागवन्ती अपने प्रेमी को गोद में लेकर जी भर रोई। दु:ख की ज्वालाओं में दहकते हुए उस रमणी के हृदय से भावों का बवण्डर उठा –

खड़ग धार पर काय, चालै तो चलवो सहज।
मुस्कल जग रै माँय, नेह निभावण नागजी।।

हे नागजी ! तलवार की धार पर कोई चले तो वह आसान काम है, लेकिन इस संसार में प्रेम को अन्त तक निभाना सहज कार्य नहीं। प्रेम के मार्ग में असंख्य आपत्तियाँ हैं जिन्हें नागवन्ती सह लेती लेकिन नागजी उसे न सह सका। नागजी की कायरतापूर्ण मृत्यु पर यह चुटकी भी है लेकिन हृदय की कसक इस चुटकी में अद्वितीय विशेषता से व्याप्त है :–

चलताँ हलताँ चीत, सूताँ बैठाँ सीरखी।
पड़ै न जूनी प्रीत, नैण लग्योड़ा नागजी।।

चलते बैठते, सोते–जागते लगी हुई प्रीति न तो पुरानी पड़ सकती है और न भुलाई जा सकती है। प्रेमी जब तक जीवित रहता है, तब भी उसे हर समय चलते बैठते खाते सोते समय याद आता रहता है लेकिन जब संसार से ही चला जाता है तब तो उस विरहाग्नि का क्या कहना! नागवन्ती से नागजी पल्ला छुड़ाकर मृत्युलोक से अवश्य चले गये लेकिन ''नैण लग्योड़ा'' की प्रीति कैसे भुलाई जा सकती है। इसलिए तो नागवन्ती अपने प्रेमी से स्वर्ग में मिलने के लिये प्रस्तुत हो गई।

नागा नागर वेल, पसरै पण फूलै नहीं।
बालपणै रो मेल, बिछड़ै पण भूलै नहीं।।

हे नागजी ! नागरबेल फैलती रहती है किन्तु फूलती नहीं। बालकपन में लगी हुई प्रीति बिछुड़ने पर भुलाई नहीं जा सकती। प्रेमियों के लिये कोई भी दुखदायी बात नहीं है सिवाय स्मृति के। यदि स्मृति न होती तो श्रृंगार रस की आधारशिला ही न होती। प्रेमी बिछुड़ जाते हैं लेकिन उनकी स्मृति

हर समय खटकती रहती है। यही बात नागवन्ती अपने प्रिय से कहती है, कि क्योंकि बिछुड़ने पर भी तुम भुलाए नहीं जा सकते अत: मैं तुमसे बिछुड़ना नहीं चाहती और तुम्हारे पीछे की पीछे आ रही हूँ।

चित में आवे चीत, जित तित ही देखै जराँ।
मन लागा सो मीत, न्यारा हुवै न नागजी।।

जिधर देखती हूँ उधर तुम ही चित में याद आते हो। मन से बने हुए मित्र कभी अलग नहीं हो सकते। 'मन लागा सो मीत, न्यारा हुवै न नागजी' में प्रेम का एक अमूल्य सिद्धान्त लिखा है। ''न्यारा हुवै न'' अर्थात् बिछुड़ नहीं सकते। मरने पर भी न बिछुड़ना मार्के का है। राजस्थानी में ऐसा वर्णन बहुत है। शरीर दूर होने पर भी आत्मा दूर नहीं होती। ''ढोला मारू रा दूहा'' में कई जगह प्रसंग है, जैसे –

पंथी एक संदेसड़ो, भल माणस नै भक्ख।
आतम तुझ पासै अछै, ओळग रूड़ा रक्ख।।1।।
सज्जण देसन्तर हुआ, जे दिसंता नित्त।
नैणे तो वीसारिया, तूँ मत विसरे चित्त।।2।।

अर्थ– हे पथिक ! भले मानस को संदेशा देना कि मेरी आत्मा तो तेरे ही पास है, आँखें भले ही अलग हों।।1।। हमेशा यहाँ दिखने वाले प्रियतम आज विदेश चले गये हैं; आँखों ने तो उन्हें भुला दिया है लेकिन हे चित्त! तू उन्हें मत भूलना।।2।।

जोड़ै ज्यूँ ही जोड़ विणजारै रे ब्याज ज्यूँ।
तनिक जोड़, मत तोड़ नातो ताँतो नागजी।।

बनजारे के ब्याज की तरह जिस किसी तरह जुड़े, तू जोड़। लेकिन जोड़ने के बाद इस प्रेम सम्बन्ध को मत तोड़। लेकिन मृत्यु के सम्मुख तो सारी दुनिया ही बेबस रहती आई है। मीरा की उस पंक्ति ''मीरा के प्रभु गिरधर नागर, ज्योत में ज्योत मिला जा'' के अनुसार सुगना (नागवन्ती) ने अपने प्रियतम की अमर–ज्योति में मिल जाना ही सार्थक समझा और अपने प्रियतम को अन्तिम समय के लिये आराम से सोने के लिये सम्बोधित किया :–

मूँछ फरूकै पवन सूँ, हँसै बतीसूं दन्त।
सोरो सोज्या नागजी, मो सुगना रा कन्त।।

पवन से मूंछें प्रकम्पित हैं और बत्तीसों दाँत हँसते हुए प्रतीत होते हैं। मुझ सुगना के प्रति नागजी! अच्छी तरह सो जाओ। हृदय के हाहाकार को दबाकर नागवन्ती अपने प्रियतम को सोने को कह कर चिता में आग लगवा देती है। वह भी शीघ्र ही अपने पति का मार्ग अनुसरण करती हुई स्वर्गलोक में बिछुड़े हुए प्रियतम से जा मिली।

शेक्सपियर रचित रोमियो जूलियट नाटक का प्रेम विश्वविख्यात है और विद्वान पाठक पढकर अनुभव करेंगे कि नागजी का और रोमियो जूलियट का कथानक बहुत बातों में मिलता–जुलता है। फर्क इतना ही है कि 'रोमियो जूलियट' एक अंग्रेज ने लिखी है जिसकी ख्याति विश्वविख्यात है और प्रस्तुत नागजी की कथा किसी ऐसे चारण द्वारा लिखी गई है जिसका नाम आज उसके वंशधर भी नहीं जानते होंगे। इसका कारण यही है कि हम हमारे साहित्यकारों का आदर नहीं करते।

❁ ❁ ❁

प्रकरण : तीन

महाराजा सर गंगासिंहजी बहादुर रा पीछोला

भूतपूर्व बीकानेर नरेश का शुभ नाम महाराजा सर गंगासिंहजी बहादुर था। यह बड़े प्रजावत्सल एवं दयालु राजा थे। प्रत्येक क्षेत्र में उनका स्थान महत्त्वशाली था। धार्मिक, राजनैतिक और सार्वजनिक हितों में सहायता देना आपकी आदत थी। इन्हीं कारणों से प्रजा उनकी पूर्ण भक्त थी; उनकी मृत्यु पर प्रजा का शोक–संतप्त होना बिल्कुल स्वाभाविक था। देशनोक के बारहठ कान्हीदानजी ने राजस्थानी में उनके लिये एक पीछोला कहा है –

दूसरो भागीरथ उठगो देश सूं गंगनदी बीकपुर लाय गंगेश।
अनुपम आदरश देय आरज इळा प्रजा पुत्रों न राख भेद लवलेस।
आदरण हिंद रो गयो हिंदवाण सूँ संभाळण देवभाषा सुराँलोक।
शासन सुनीति री आधार भीति डिगी सुण हुओ नरेन्द्राँ मंडली शोक।।
थरहरा गये सर्व खिस्त रजवाट थंभ, सिसकार फुफकार रव उठी रण शेष।
विलख हा हा हुई हिन्दू विश्वविद्यालय, दुखित देव नागरी लिपी निज देश।
राठवड़ भूप हो रूप रजवट रो, क्षत्रिय तेज निज रखण खागाँ।
उत्तमोत्तम उदाहरण दिया अधीपाँ इळा, वीखर सिकाराँ रमी वागाँ।।
राजनीति रची अस्त हिंदवाण रो भूप, वीकाणै रो हुयो स्वर्गवास।
दुखित दिल चारण वरण देसाणरो, संतप्त 'कान्ह' रो शोकोच्छवास।।

गङ्गनदी (गङ्गनहर) को बीकानेर में लाने वाला यह दूसरा भागीरथ संसार से चल बसा। संसार में एक अनुपम आदर्श रखकर प्रजा और पुत्रों में कुछ भी भेद नहीं रखा। सुरलोक में देवताओं की भाषा संभालने के लिये हिन्दुस्तान का आदरणीय नृप भारतवर्ष से चला गया। सुशासन और सुनीति की आधार भित्ति बीकानेर नरेश के देहावसान से समस्त नरेन्द्र मण्डल में शोक व्याप्त हो गया। क्षात्रधर्म के दृढ़ स्तम्भ हिल उठे और रण में फुफकारें और सिसकारें हो उठीं। हिन्दू विश्वविद्यालय बिलखता हुआ हाहाकार कर

उठा और देवनागरी लिपि और समस्त देश दुखी हो उठा। यह राठौड़ क्षात्रधर्म का रूप था। क्षात्रतेज को बनाये रखने के लिये इस वीर ने तलवारों से सिंहों की शिकारें खेलीं। संसार में राजाओं को इन्होंने अनुपम उदाहरण प्रदान किये। राजनीति को रचने वाले हिन्दू सूर्य बीकानेर नरेश स्वर्ग सिधार गये। इनके चले जाने से देशनोक का चारण वर्ण दुखित है। यही कान्हीदान का शोकोच्छवास है।

बिरकाली (बीकानेर स्टेट) निवासी, बादळी, कहमुकरणी इत्यादि पुस्तकों के रचयिता, राजस्थानी साहित्य के देदीप्यमान रत्न, चन्द्रसिंहजी ने भी उक्त महाराजा साहब के लिये पीछोले कहे हैं। कुछ का उदाहरण यहाँ दिया जाता है –

बीकै कुळ रा भाण, असमै आथँविया कियाँ।
विलखै धर वीकाण, थाँ विन गंग महीप अब।।

हे बीका कुल के भानु! तुम असमय ही क्यों अस्त हो गये? हे गङ्ग महीप! तुम्हारे बिना आज बीकानेर की धरा बिलख रही है।

जाने वालों के लिये हमारे मन में एक ही प्रश्न होता है। यही प्रश्न कवि अपने प्रजावत्सल राजा से कहता है कि तुम इतने जल्दी क्यों चले गये।

फिर धरा का बिलखना बड़ा मार्के का है। सोरठे का शब्द–लालित्य उल्लेखनीय है।

कीरत समदाँ पार, गाईजै जिण री अटल।
भूपत गंग उदार, हिय किण विध काठो कियो।।

जिसकी–कीर्ति समुद्र पार भी गाई जाती है उसी गङ्ग महीप ने आज हृदय कठोर क्यों कर लिया? (अर्थात् हमें अकेले छोड़कर कहाँ चले गये?) कवि ने हृदय का दुखपूर्ण उलाहना 'हिय किण विध काठो कियो' में भलीभाँति चित्रित कर दिया है।

थाँरो रूड़ो रूप, अेकण जिण देख्यो निजर।
सो किम भूलै भूप वो राठोड़ी तेज तप।।

जिसने आपका प्रतिभासम्पन्न रूप एक बार देख लिया है वह आपका राठौड़ी तेज तप किस प्रकार भूल सकता है?

श्रद्धा से भरा हुआ और शोक–संतप्त हृदय का यह कथन बड़ा मार्मिक है।

इळ पर भूप अनेक दीपन्ता दीसै प्रगट।
रख राठोड़ी टेक, इसड़ो जस पायो किसै।।

संसार में कई राजा उद्दीपित हैं लेकिन इस प्रकार राठौड़ी मर्यादा रखकर कीर्ति किसने प्राप्त की?

कवि को अपना नरेश साधारण नहीं लगता और यह प्रत्येक के साथ होता है। साधारण के लिये कुछ भी नहीं कहा जा सकता। कहना तो अद्वितीय के लिये है कि राजा तो अनेक हैं पर ऐसा यश किसने प्राप्त किया है?

राख्यो निडर विचार, रजपूती राखी अचळ।
गासी जस संसार, कुळ व्रत राखण गंग नृप।।

अपने विचार हमेशा निडर रखे और इस प्रकार रजपूती को भी बनाये रखा। इसीलिये दुनिया अपनी कुल की रीति निभाने वाले इन गंगासिंहजी का यश गावेगी।

जो कुछ होना था उसके लिये बेबसी हमारे पास है लेकिन बेबसी दूर हटाने के लिये एक संतोष भी होता है और यही संतोष है जो कवि उनकी यश व कीर्ति पर दृढ़ बना लेता है।

❁ ❁ ❁

प्रकरण : चार

बैरीसालसिंहजी रा पीछोला

ठिकाना खेतड़ी (शेखावाटी; आय लगभग 15 लाख) के समीप भोपालपुरा ग्राम में आज से 60 वर्ष पूर्व गुलजी नामक चारण रहते थे। उनके पुत्र रामलालजी को खेतड़ी नरेश श्री अजीतसिंहजी ने जोधपुरस्थ सुप्रसिद्ध कवि मुरारीदानजी के पास पिङ्गल के अध्ययनार्थ भेजा। उक्त विद्या में पारंगत होकर वे एक प्रकांड पण्डित के रूप में वापिस लौटे। तब से अजीतसिंहजी की सेवा में रहने लगे। परन्तु अजीतसिंहजी की मृत्यु के पश्चात् वे केड़ ठिकाने के ठाकुर साहब श्री ओनाड़सिंहजी के सुपुत्र बैरीसालसिंहजी के पास रहने लगे। बैरीसालसिंहजी और रामलालजी खूब हिलमिल गये। परन्तु एक दिन अकस्मात् बैरीसालसिंहजी की मृत्यु हो गई। रामलालजी को बहुत दुख हुआ। दुख का अनुमान सहृदय ही लगा सकते हैं। सभी कविताओं को छोड़कर उनके पीछे पीछोले लिखना आरम्भ किया। कुछ के उदाहरण निम्नलिखित हैं –

दिवस कोस जाता जदाँ, बुलवाता उण वार।
कहो कंवर किण कारणै, लियो न इण दिन लार।।

हमेशा तो एक कोस यात्रा करते समय भी मुझे बुला लेते थे लेकिन हे कुंवर, कहो आज किस कारण मुझे संग नहीं लिया? मृत्यु की गोद में गये हुए प्रत्येक मनुष्य के प्रति उसके कितने ही सगे सम्बन्धियों के हृदय में यह मूक भाव जागृत होता होगा लेकिन उसे वाणी का रूप दिया है सुकवि रामलालजी ने। इसे कहते हैं हृदयग्राही कविता।

बहता मद रा बतकड़ा, सज्जण रहता संग।
दीसै उण सरदार बिन, बंगलो आज बिरंग।।

जब बंगले में कुंवर बिराजते थे, तब सज्जनों की भीड़ जमी रहती थी और मद के घट उंडेले जाते थे। लेकिन आज वही बंगला कुंवर बिना बिरंगा दिखाई देता है। वियोगी को संसार ही बिरंगा लगता है तब उस बंगले की तो बात ही क्या जिसमें उसका प्रेमी कभी ठाठ–बाट से रह चुका है।

कर प्रलाप कइ वार, धर धोखो धापो नरां।
बर–बर बैरीसाल, मरियाँ ही मिळसी नहीं।।

हे मनुष्यो ! कितना ही विलाप व शोक क्यों न करो, किन्तु बैरीसालसिंहजी जैसे मित्र मरने पर भी दूसरी बार प्राप्त नहीं होंगे। मरकर प्रेमी से स्वर्ग में मिलने की सर्व साधारण इच्छा को भी निराश कवि की कल्पना लोप गई और कह डाला 'मरियाँ ही मिळसी नहीं।'

मिळियां सूं हद मेळ, रहसी इण सरकार में।
कविता हंदी केळ करसी कुण अण कँवर बिन।।

आने जाने वालों से इस केड़ ठिकाने में स्नेह भाव बना रहेगा लेकिन कविता सागर में उस कुंवर बिना कल्लोल करने वाला कौन होगा? अर्थात् कोई नहीं। संसार में सभी काम चलते रहेंगे और चलते हैं लेकिन वियोगी को अपने प्रेम के बिना उन्हीं कामों का चलना खटकता है। वह चाहता है कि मेरे प्रेम के अभाव से पीड़ित प्रकृति भी अपना कार्यक्रम थोड़ी देर के लिये रोक ले। साथी के बिछुड़ने पर ठीक उसी प्रकार हम भी कहते हैं कि आज उसके बिना फलाना कार्य कौन करेगा?

मद प्यालो मनुहार दे गज अरि ज्यों कर गाज।
संग ले सारै साथ नै, बंगले फेर विराज।।

सब संग को साथ में लेकर इस बंगले में एक बार फिर आकर उसी पुरानी तरह मद की मुनहारें करो और सिंह की तरह गर्जन करो।

इतने दिन के सुखमय जीवन के बाद यकायक विषाद की आग ने कवि हृदय को झुलस दिया। उन्हें संसार की अपूर्णता और मानव की बेबसी पर बड़ा क्षोभ हुआ। बन्दूक लेकर उन्होंने अपने गले पर चलाई लेकिन गोली घातक नहीं हुई। खेतड़ी के अस्पताल में इनका इलाज हुआ। कुछ ठीक होने पर अपने प्राणों की ढिठाई पर क्रोध आया और माया के आवरणों में लिपटे प्रेम और मित्रता के आह्वानों से दूर गये अपने जीवन को फटकारा –

............................कँवर शयन धर पर करै।
धरकार क्रोड़ इण देह नै, आज प्राण नह नीसरै।।

इतना कहने पर प्रेम का वह प्रवाह जो अस्पताल के वातावरण में पीड़ा के साथ लुप्त हो गया था पुनः उबल पड़ा। अपना घाव जो करीब करीब ठीक हो गया था फिर से खराब कर दिया। उन्होंने जैसा कि छप्पय में कहा–''कंवर तो आज पृथ्वी पर शयन करते हैं और धिक्कार है इस देह को जिसमें से अब भी प्राण नहीं निकलते !'' वैसा ही क्रियात्मक कार्य कर दिखाया।

❀ ❀ ❀

प्रकरण : पाँच

बाघजी रा पीछोला

इससे पहले कि हम साहित्यिक महत्त्व को लेकर पीछोलों पर विचार करें; हमें बाघजी के विषय की कहानी का उल्लेख करना आवश्यक है। यह बात लगभग सं. 1590 के आसपास की है। उस समय जोधपुर के राजा इतिहास प्रसिद्ध रणबंके वीर मालदेवजी थे, जिनसे युद्ध में शेरशाह सूरी ने मुँह की खाकर कहा था कि काश! मैं मुट्ठी भर बाजरे के लिये दिल्ली की सल्तनत खो बैठता।

इन्हीं राव मालदेवजी का विवाह जैसलमेर के रावल लूणकरणजी की कन्या ऊमादे के साथ हुआ। सुहागरात्रि को ऊमादे को शृंगार करते देर हो गई तो इन्होंने अपनी दासी भारमली को मालदेवजी का जी बहलाने के लिये भेजा। लेकिन भारमली इतनी सुन्दर थी कि उसके सौंदर्य के आगे मालदेव जी अपने आपको न बचा सके।

शृंगार करने के पश्चात् ऊमादेजी भी आई और आकर वापिस चली गई। शृंगार वगैरह उतार कर कह दिया कि यह पति मेरे लायक नहीं है। जीवन भर पति से वह रूठी रही और पति का मुँह न देखा। इसलिए ऊमादे रूठी रानी के नाम से भी प्रसिद्ध है। लेकिन मालदेवजी की मृत्यु पर ऊमादेजी सती अवश्य हुई थी।

अपनी राजधानी को लौटकर मालदेवजी ने अपने अधीन चारण कवि आशानन्दजी को ऊमादेजी को मना लाने के लिये भेजा। आशानन्द बड़े भावुक एवं निर्भीक प्रकृति के थे। जैसलमेर जाकर किसी प्रकार ऊमादेजी को मनाकर वहाँ से रवाना हुए। रास्ते में एक जगह ऊमादेजी ने मालदेवजी और भारमलजी के बारे में बात पूछी। मस्त कवि कहते समय परिणाम की चिन्ता नहीं करता। उत्तर स्वरूप एक दोहा कहा –

माण रखै तो पीव तज, पीव रखै तज माण।
दो दो गयंद न बंधही, हेको खम्भू ठाँण।।

अर्थात् मान रखना है तो पति को त्याग दे और पति रखना है तो मान को त्याग दे लेकिन दो–दो हाथियों का एक ही स्थान पर बांधा जाना असम्भव है।

ऊमादे की प्रसुप्त रोषाग्नि दोहे के घृत से पुन: प्रज्वलित हो गई और कहा मुझे ऐसे पति की आवश्यकता नहीं। रथ को वापिस जैसलमेर ले जाने की आज्ञा दी। बारहठजी ने अपने मन में अपने कहे गये शब्दों पर विचार किया और पछताए भी लेकिन वे शब्द वापिस कैसे लिये जा सकते थे। वे भी ऊमादेजी के साथ जैसलमेर पहुँचे। लूणकरणजी को निवेदन किया कि बाईजी के भले के लिये भारमली को मालदेवजी से बुला लो।

लूणकरणजी ने ऐसा ही किया लेकिन वे स्वयं भी उसके यौवन व लावण्य पर मुग्ध हो गये। लूणकरणजी की दोनों रानियों ने परामर्श करके भारमली को जैसलमेर से हटाने की सोची। सोढ़ीजी ने ऊमरकोट अपने भाइयों से भारमली को ले जाने को कहा लेकिन ऊमरकोट के सोढ़ों की जैसलमेर के रावल से शत्रुता लेने की हिम्मत न पड़ी। तब कोटड़ियानी (लूणकरणजी की दूसरी रानी) ने कोटड़े से अपने भाई बाघजी को बुलाया। कोटड़ा मालानी परगने में है और बाघजी के वंशज व सजातीय अब भी वहाँ रहते हैं।

बहन का दु:ख मिटाने के हेतु बाघजी शीघ्र ही आये और रानियों के कथनानुसार भारमली को ऊँट पर चढ़ाकर जैसलमेर से छिप कर भाग आये। लूणकरणजी कोटड़े पर धावा तो बोल नहीं सकते थे क्योंकि पहली बात तो उनकी खुद की प्रतिष्ठा घटती और दूसरी बात कि मालदेवजी जैसे शक्तिशाली नरेश मालानी के संरक्षक थे। अत: आशानन्द को भेजा कि तुम बाघजी को वचनबद्ध करके भारमली को मांग लो और यहाँ लाओ।

दोनों रानियों ने बाघजी को पहले ही सूचना दे दी कि बारहठजी की बातों में न आना। जब बारहठजी कोटड़े पहुँचे तो बाघजी ने उनका बड़ा सम्मान किया। उनके लिये इतनी खातिरदारी की कि आशानन्दजी अपने उद्देश्य को भूल से गये।

एक दिन बाघजी शिकार को गये। साथ में भारमली व बारहठजी भी थे। भारमली का बाघजी से प्रेम हो गया था अत: वह भी बाघजी को

छोड़कर जैसलमेर जाना नहीं चाहती थी। उसने हाथ से सूले सेक कर विश्राम स्थान पर बारहठजी को दिये और शराब भी पिलाया। भावुक–हृदय–कवि के लिये इतना ही काफी था, कह उठे –

जँह गिरवर तँह मोरिया, जँह सरवर तँह हँस।
जँह बाघा तँह भारमलि, जँह दारू तँह मँस।।

बाघजी ने झट से कह दिया, बारहठजी आप बड़े हैं और बड़े आदमी दी हुई वस्तु को वापिस नहीं लेते। भारमली को मुझ से न मांगना। आशानन्दजी पर वज्रपात–सा हो गया लेकिन बाघजी ने बात संभाल ली और बारहठजी को प्रार्थना की कि आप मेरे यहाँ रहिये।

बाघजी ने अपने जीवन का ध्येय ही आशानन्दजी की सेवा में निहित कर रखा था किन्तु विधि विधान भी बड़ा विचित्र है। एक दिन अकस्मात् बाघजी की मृत्यु हो गई। भारमली भी उनके पीछे सती हो गई। आशानन्दजी का जीवन अब शून्य हो गया। रह रहकर उन्हें बाघजी के साथ रहकर उड़ाये हुए आनन्द याद आने लगे और बाघजी की स्मृति ने उन्हें बेचैन बना दिया। कवि तो थे ही–अपने उद्गारों के पीछोले बनाये।

बिना बाघजी के कोटड़े का वर्णन देखिये –

बाघैजी बिन कोटड़ो, लागै यों अहड़ोह।
जानी घरे सिधावियाँ, जाणै मांढवड़ोह।।

बाघजी के बिना यह कोटड़ा ऐसा लगता है जैसा बरातियों के चले जाने पर विवाह मण्डप।

जिसके घर कभी बरात आई हो और विवाह मण्डप को बरातियों के चले जाने पर देखा हो वही अनुमान लगा सकते हैं या बाघजी जैसे मित्र के बिछुड़ने पर आशानन्दजी जैसे भावुक कवि ही अनुमान लगा सकते हैं कि शून्यता क्या होती है? सच पूछो तो इस विवाह मण्डप को शून्यता का साकार रूप कह सकते हैं। दोहे की थाह ली जाय तो इसमें उपमा मात्र का ही लालित्य नहीं है बल्कि इसमें हृदय की सच्ची उथल–पुथल अन्तर्निहित है।

मारग मंडी चणाय, पंथ जोऊं सैणा तणो।
कोई बटाऊ आय, (म्हनै) वातां कहो नी बाघरी।।

राह पर मठ बनाकर अपने मित्र की राह देख रहा हूँ। कोई मुझे बाघजी की बातें कहो न।

निर्दोष और स्वच्छ हृदय की यह जिज्ञासापूर्ण आहें राजस्थानी साहित्य की अमर सम्पत्ति है। कल्पना को कितना मृदु रूप प्रदान किया है। 'मारग मँडी चणाय, पंथ जोऊँ सैणा तणो' में कवि हृदय का भावुक प्रेम किस विशेषण से चित्रित है और 'म्हनै वाताँ कहो नी' कितनी मर्मस्पर्शी अभिलाषा है। प्रेमी अपने प्रिय की बातें सुनकर कभी तृप्त नहीं होता। बिहारी का एक दोहा यद्यपि उपर्युक्त दोहे के विषय का नहीं है लेकिन बातें सुनने के प्रसंग में यहाँ कहा जाता है –

फिर फिर बूझती है कहा कह्यौ साँवरे गात।
कहा करत देखे कहाँ, अली चली क्यों बात।।

आशानन्दजी भी चाहते हैं कोई कहीं से आये और बाघजी की बातें कहे। इसलिए तो कहा है, 'कोई बटाऊ आय (म्हनै) वातां कहो नी बाघरी।'

लाखों बाळद लाय, कीरत रो सोदो करे।
अेकरस्याँ घिर आव, विणजारो ह्वै बाघजी।।

लाखों बैलों को लाकर कीर्ति का सौदा करना। बनजारा होकर भी एक बार फिर आ जाना।

प्रेमी के लिये 'एकरस्याँ घिर आव' में कितना ललित आह्वान चित्रित है। एक बार फिर, प्रत्येक असफल और प्रत्येक अनुरक्त की अभिलाषा बनी रहती है। एकरस्यां के भविष्य में एक नये लोक की सृष्टि है और एक निश्चित आनन्द की प्राप्ति की आशा है। बाह्यावरणों की कोई चिन्ता नहीं, चाहे वह 'बिणजारो' होकर अथवा अन्य रूप में–उसे तो पुराना हृदय चाहिए। कितना आदर्श भाव सोरठे में व्यक्त किया गया है।

हाटे पड़ी हठताल, चतरंगिया चाले रह्या।
करसण करै कलाळ, विकरो भागो बाघजी।।

रसिक बाघजी के चले जाने से हाटों में हड़ताल हो गई। कलाल की तो बिक्री ही टूट गई, वह अब खेती करने लग गया है।

आशानन्द अपनी प्रतिभा से विश्व व प्रकृति के समस्त व्यापारों में बाघा के बिछुड़ने का परिणाम देखते हैं। कलाळ के खेती करने का पेशा भी उन्हें इसी बात का सूचक प्रतीत होता है कि बाघजी के न होने से उनका पेशा टूट गया है। इसलिए वे बाघजी को वापिस लौटने को कहते हैं। अपने

जैसे मित्रों के लिये न लौटें तो उन्हें कोई क्षोभ नहीं लेकिन मधुर भावुकता व अद्भुत भोलेपन से वह कहते हैं कि मेरे लिये नहीं तो कम से कम कलाळों के लिये ही आ जाओ या उन व्यापारियों के लिये ही आ जाओ जिनकी दुकानों पर तुम जैसे ग्राहकों के न होने से ताला जुड़ा हुआ है। तुलसीदासजी ने भी रामचन्द्रजी के लिये कौशल्या के मुख से कहलाया है–

राघौ एक बार फिर आवो।
ए बर बाजि बिलोक आपने
बहुरि बनहिसिधावो।।
जे पय प्याइ पोखि कर पंकज, बार बार पुचकारे।
क्यों जीवहिं मेरे राम लाड़ले, ते अब निपट विसारे।।
भरत सौगनी सार करत है, अति प्रिय जानि तिहारे।
तदपि दिन हि दिन होत झावरे, मनहु कमल हिम मारे।।
सुनहु पथिक जो राम मिलहिं वन कहियो मातु संदेशो।
तुलसी मोहि और सबहिन ते इनको बड़ो अंदेशो।।

प्रेमी को आशा ही नहीं विश्वास रहता है कि उसका प्रेमी औरों के कष्ट निवारण के हेतु अवश्य आवेगा।

कूकै कोयलियांह, मीठा बोलै मोरिया।
राचै रंग रळियांह, बागां विच्चै बाघजी।।

हे बाघजी ! आज कोयल कूक रही है और मोर मृदु–ध्वनि से बोल रहे हैं। और बाग में सुन्दर बहार है (फिर अब तो आ जाओ) अपने प्रेमी को बुलाने के कितने बहाने ढूंढ लाते हैं।

बाघा आव वळेह, दुख भंजण दूदा हरा।
आठूँ पहर उदेह, जाताँ देगो जेतरा।।

हे बाघजी ! (जैतसिंह के पुत्र) तेरे विरह से उत्पन्न दु:ख आठों पहर बना रहता है। अब हे दादू जी के वंशज! एक बार फिर आकर उसे मिटाजा।

कसतूरी झंकी भई, केसर घटियो आघ।
सब वस्तु सूंघी थई, गयो वटाऊ बाघ।।

कस्तूरी सस्ती को गई है और केसर का भाव भी गिर गया है। सब वस्तुएँ सस्ती हो गई लेकिन पथिक बाघजी चले गये।

धीरे–धीरे आशानन्दजी की कहानी उदयपुर महाराणा के पास गई। महाराणा ने आशानन्दजी को उदयपुर में बुलाया और परीक्षा लेनी चाही कि वास्तव में ही क्या आशानन्दजी बाघजी को चाहते हैं? राणा ने सोचा प्रेम और माया का संग्राम होने दो, देखें कौन जीतता है। आशानन्दजी को कहा कि बारहठ जी आपको 4 लाख रुपये दे दिये जावेंगे यदि आप रात के चारों पहर बाघजी के नाम लिये बिना ही निकाल दो। मेरे और बाघजी के पुराना बैर था अत: भोर होने के पश्चात् जब आप यहाँ से चले जाएँ तब भले ही बाघजी के गुणगान करें। आशानन्दजी का पुत्र उनके साथ था। पुत्र ने विनती की कि कम से कम आज रात तो मेरे लिये ही चुप रहें। राणा पहरेदार को इशारा करके चले गये। आशानन्दजी ने पुत्र की विशेष इच्छा पर ह्वदय पर पत्थर रखकर कुछ रात्रि निकाली। सच्चे प्रेमी आपस में बिछुड़ते हैं तो उन्हें नींद आना भी कठिन है। एक पहर रात्रि के बीतते ही बाघजी की स्मृति शूल की भाँति आशानन्दजी का ह्वदय भेदने लगी। इतनी देर से दबा हुआ भावों का प्रवाह पुन: तीव्र हो गया। बोले –

बाघा आव वळेह, धर कोटड़ै तूँ धणी।
जासी फूल झड़ेह, वास न जासी बाघरी।।

हे कोटड़े के स्वामी बाघजी! एक बार फिर आ जावो, फूल झड़ जाते हैं लेकिन उनकी सुगन्धि नहीं जाती (तुम्हारी कीर्ति की महक भुलाई नहीं जा सकती)।

'बाघा आव वळेह' कितना मीठा निमंत्रण है। 'वास न जासी बाघरी' वास्तव में ठीक है कि प्रेमी की स्मृति प्रेमी की मृत्यु होने पर मिट थोड़े ही सकती है! वह तो उल्टी और तीव्र होगी। कवि ने अनुभूति का पुट देकर जीवन के इस महान सत्य को कितने थोड़े शब्दों में किस कौशल से व्यक्त किया है।

दोहे को सुनकर सिपाही ने पूछा कि आशानन्दजी जाग रहे हो या नींद में कह रहे हो। कवि ने कहा–बाघजी बिना नींद ही नहीं आती और एक नि:श्वास खींचते हुए कहा –

ठोड़ ठोड़ पग दौड़, करस्याँ पेटज कारणै।
रात दिवस राठोड़, वीसरसूँ नह बाघ नै।।

जगह जगह पेट के लिये भटकता फिरूंगा लेकिन बाघजी को कभी भी न भूल सकूंगा।

सिपाही ने कहा–अपनी मस्ती में अपने पुत्र पर हृदय हीनता क्यों करते हैं? दो लाख रुपया तो गुमा चुके अब दो लाख को तो बचाइये। आशानन्दजी गम्भीर होकर चुप हो गये।

लेकिन वह दबी हुई प्रेमी की विकल हूक दबी ही कैसे रह सकती थी। तीसरे पहर का प्रभात होते समय मुर्गा बोला। प्रभात के शान्त वातावरण में हृदय के समस्त वेग से मुर्गे के उस दु:खी क्रन्दन में क्या भाव होते हैं यह एक विरही ही बता सकता है। बारहठजी के हृदय का प्रसुप्त प्रवाह विकल हुआ और बह उठा –

कूकड़ला क्यूं कूकियो, ढळती माँझल रात।
(कै) तनै बिल्ली सँतायियो, (कै) बाघा तणो विराग।।

हे मुर्गे ! तू इस बीतती हुई निस्तब्ध रात्रि में क्यों कर क्रन्दन कर उठा? क्या तुझे बिल्ली ने कष्ट दिया है अथवा तुझे भी मेरी ही भाँति बाघजी का विरह सता रहा है?

भावुक कवि की इस भोली जिज्ञासा में उसके प्रेमी का भव्य व्यक्तित्व कितनी महानता से अभिव्यञ्जित है। हरिऔधजी ने भी 'प्रियप्रवास' में लिखा है–

फूलों पत्तों सकल पर है वारि बूंदें लखाती।
रोते हैं या विटपि सब यों आंसुओं को दिखा के।।
रोई थी जो रजनि दुख से नद की कामिनी के।
ये बूंदें हैं निपपित हुई या उसी के दृगों से।।

आशानन्दजी भी मुर्गे के चिल्लाने में अपने दर्द की हूक पाते हैं। 'कै तनै बिल्ली संतायियो कै बाघै तणो विराग' कितना भोला प्रश्न है। इस प्रश्न में एक कसक है। कहते हैं कसक का स्पष्टीकरण ही काव्य है। इस दोहे के समान कसक का इतना अच्छा स्पष्टीकरण और कहाँ पाया जा सकता है।

सिपाही ने सोचा, इस समय याद दिला दिया तो बचा हुआ एक लाख रुपया भी चला जाएगा। अत: प्रात:काल होने के कुछ पहले सिपाही ने, बारहठजी को कहा–अब तो केवल आध घड़ी धीरज रखिये इतने में महाराणाजी भी आ जायेंगे और बचा हुआ एक लाख रुपया तो मिल जाएगा। आशानन्दजी का प्रेम इसी समय माया पर विजय स्थापना कर गर्व से खड़ा

हुआ। मन ही मन अपनी कमजोरी पर रोष करते हुए सिपाही से कहा –

थड़ै मसांण थयांह, आतम पद पूगां अलख।
(म्हारा) गंगा हाड़ गयाँह, (हूँ) वीसरसूं जद बाघ नै।।

मैं बाघजी को तभी भूल सकूंगा जब मेरा श्मशान भी बाघजी के स्मारक के पास ही बना दिया जावेगा, मेरी आत्मा परम पद को प्राप्त हो जायेगी और मेरी हड्डियाँ गंगा में बहा दी जावेगी।

सिपाही ने कहा–गजब कर दिया। आपने चारों लाख रुपये खो दिये। इतने में महाराणा भी आ गये और पूछा कि क्या बारहठजी चारों लाख रुपये खो चुके? ऐसे प्रश्न का भावुक कवि ने उत्तर दिया –

मड़ा मसांण गयांह, अलल ले पोंछ्या अलख।
(म्हारा) गंगा हाड़ गयांह, (हूं) तोय न भूलूं बाघ नै।।

मेरा शव श्मशान भूमि को पहुँच जावेगा, मेरी आत्मा स्वर्ग–दूत ले जावेंगे और मेरी हड्डियाँ गंगा में बहा दी जावेगी; तब भी मैं बाघजी को नहीं भूल सकता।

कवि ने इस सोरठे में अपनी प्रतिभा और अपने व्यक्तित्व की पराकाष्ठा कर दी। भावुकता को चरम सीमा तक पहुँचा दिया '(हूं) तोय न भूलूं बाघने' एक तीर–सा प्रभाव करता है। यह वह काव्य है जिसे सुनकर 'तन मन धुनत शरीर' की उक्ति ठीक बैठती है। उस धनुर्धर के तीर से क्या और कवि की उक्ति से क्या, जो लगकर हृदय को तिलमिला न दे। तेरह मात्राओं से निर्मित इस चरण में कितनी गम्भीरता व दृढ़ता है। इसे कहते हैं प्रतिभा। प्रतिभा सम्पन्न कवि कविता के निर्माण में न शब्द कोषों से शब्द ढूंढता है और न व्याकरणों से अलंकार छन्द इत्यादि। उसके तो शब्द निर्भीक शिकारी के तीर की भाँति लगकर हृदय को घायल कर देते हैं। फिर कहा –

चींघण चालवियांह, खीरां बाळ खखेरियाँ।
राणा राख थयांह, वीसरसूँ नह बाघ नै।।

चींघण से (मुर्दा जलाते समय खोपड़ी तोड़ने वाली लकड़ी से) जब कपाल क्रिया कर दी जावेगी और अंगारों में मुझे जलाकर उथलाया जावेगा तब भी मैं बाघे को नहीं भूल सकूंगा। हे राणा अपनी थैलियों को अपने पास रखो।

प्रेमी की प्रेम–स्मृति के आगे रुपयों का लोभ नहीं टिक सका। इसीलिए तो कहा है ''राणा राख थयांह''। यहाँ राणा को भी उपेक्षा भरी

दृष्टि से देखा गया है। अपनी थैलियाँ अपने पास रखो, मुझे नहीं चाहिये–मैं बाघे को नहीं भूल सकता। कितनी आहें भरी हुई हैं इस कथन में।

राणा व बारहठजी एक दिन एक हौज में स्नान कर रहे थे। आशानन्दजी पहले ही निकल गये और भूल से राणा के वस्त्र पहन लिए। राणा जब बाहर आये तो बारहठजी को कहा कि आपने तो मेरी पोशाक पहन ली। दुखी हृदय के लिये इतना ही पर्याप्त था। कहा –

की कह की कह की कहूं, की कह करूं बखाण।
थारो म्हारो नी कियो, ओ बाघा अहनाण।।

क्या–क्या कहकर मैं बाघजी के बखान करूं? बाघजी की तो यह आदत थी कि उन्होंने 'यह तेरा और यह मेरा' नहीं किया।

इतना कहकर पोशाक उतार कर राणा को दे दी और उदयपुर को छोड़ते हुए कहा –

हाल हिया सिववाड़ियाँ पग दे पावड़ियांह।
बाघै सूँ बातां करां, गळ दै बाँहड़ियांह।।

दुखी मनुष्य के लिये संसार में कोई नहीं, तभी कितने निश्वास खींचकर कहा है–'हाल हिया।' 'बांहड़िया' कितना मृदु है। गले में बाहें डालकर बात करेंगे। यकायक आंखों के सम्मुख चित्र प्रगट हो जाता है।

वहाँ से रवाना होकर कोटड़े के उस वट के नीचे आये जिसके नीचे आशानन्दजी ने 'जहँ गिरवर तहँ मोरिया, जँह सरवर तँह हंस' वाला दोहा कहा था। वहाँ आते ही उनका मस्तिष्क बीते हुए मीठे स्वप्न देखने लगा। इतने में ही उनका ध्यान वट की ओर गया। वह ज्यों का त्यों था। उसे हरा भरा देखकर आशानन्दजी का हृदय रो उठा। वट की निर्लज्जता को धिक्कारने के लिए कहा –

बड़ बावड़ी तणाह, नीमाणो नीलो थियो।
बाघां बीछड़तांह, साखतणो सूखो नहीं।।

सूरदासजी का एक पद इससे बहुत मिलता जुलता है –

मधुवन तुम कत रहत हरे।
विरह वियोग श्यामसुन्दर के, ठाड़े क्यों न जरे।
तुम हो निलज लाज नहिं तुम को, सिर फिर पुहप धरे।।

न आशानन्दजी का वट सूख सकता है और न सूरदासजी का मधुवन। लेकिन इन उक्तियों में हृदय के विकल भावों का स्पष्ट चित्र है।

श्रीयुत सहलजी के शब्दों में चाहे इस उक्ति की तार्किक बुद्धि से खिल्ली उड़ाई जाय लेकिन सहृदय पाठक इसका आनन्द उठाए बिना नहीं रह सकता। यह चित्रण भावमय है तथापि अक्षरस: सत्य नहीं। इसे कहते हैं साहित्यिक संवेदना में हेत्वाभास।

अन्त में एक हूक निकालकर आशानन्दजी बाघजी से मिलने परलोक चले गये। वह हूक थी –

हूक कळेजै मांय, दाटूं पण दूणी दगै।
धूंधलिया धड़ मांय, बरळां उठै बाघजी।।

अपने कलेजे में उठती हुई हूक को दबाता हूँ लेकिन वह दूने वेग से उठती है। विरहाग्नि के धूम्र से धूमिल मेरे घट में हे बाघजी ! धाराएँ चल रही हैं।

सहृदय पाठक अवश्य सोचेंगे, कि इस आह में दुखी हृदय ने अपना कलेजा चीर कर रख दिया है और कवि ने इसे बनाते अपनी लेखनी तोड़ डाली है। विरही हृदय का इतना स्पष्ट चित्र संसार के बहुत थोड़े ही कवि चित्रित कर सकते हैं। स्मृति मिटाने से नहीं मिटती और वैसे ही उस स्मृति से प्रसूत जो वेदना होगी वह भी दबाने से नहीं दबती किन्तु द्विगुणित वेग से पुन: भभकेगी। फिर 'बरळाँ उठै बाघजी' में कवि हृदय की कितनी सत्यता भरी पड़ी है। 'बरळाँ' कहते हैं उन तड़फती हुई मौन हूकों को जो प्रिय की स्मृति में शरीर को फाड़कर बाहर निकलने का प्रयास करती है। एक हृदय विदारक हाहाकार विस्फोट की भाँति हृदय से फूटकर मुँह से न निकल कर अन्दर ही अन्दर समस्त अङ्ग में व्याप्त हो जाए, उसे कहते हैं 'बरळाँ' कवि ने अपने हृदय की जीती जागती और मुँह बोलती तस्वीर इस सोरठे में खींच दी है। दोहे को पढ़ते हुए किस पाठक के हृदय में हूक नहीं उठेगी।

इतना कहकर आशानन्दजी वहाँ चले गये जहाँ उनके मित्र बाघजी पहले ही पहुँच चुके थे। बाघजी संसार में अपनी स्मृति छोड़ गये और आशानन्दजी राजपूतों व चारणों के मध्य उज्ज्वल प्रेम का अनुपम उदाहरण रख गये। उनके कहे गए ये पीछोले भी उक्त दोनों मित्रों की स्मृति के समान सदा अमर रहेंगे।

प्रकरण : छः

छूटक पीछोला

अकबर अपनी सभा में तत्कालीन चुने हुए नर रत्न रखता था जिनमें पृथ्वीराज राठौड़, तानसेन और बीरबल भी थे। इन तीनों के लिये अकबर ने एक पीछोला कहा है–

पीथल सूं मजलिस गई, तानसेन सूं राग।
रीझ बोल हँस खेलणो, गयो बीरबल साथ।।

पृथ्वीराज के जाने से मजलिस के आनन्द बीत गये, तानसेन के जाने के साथ राग रागनियाँ चली गई और बीरबल के जाने के साथ रीझकर बोलना, खेलना और हँसना सब अदृश्य हो गया।

पाठकों को याद होगा कि यह पृथ्वीराज राठौड़ वही हैं जिन्होंने महाराणा प्रताप को फरमान वापिस लेने के लिये लिखा था। इनके दोहे पढ़ते ही महाराणा का स्वाभिमान सजग हो गया और अकबर से जीवन पर्यन्त लोहा लेते रहे। इनका लिखा हुआ 'बेलि किसन रुकमणी री' एक प्रामाणिक ग्रन्थ है। महाराणा प्रताप के भाई शक्तिसिंह के पृथ्वीराज बहनोई भी थे। और तानसेन व बीरबल का परिचय देना नितान्त अनावश्यक है।

✻ ✻ ✻

घंट न वाजै देहरां, संक न मानै शाह।
एकरस्यां फिर आवज्यो, माहूरा जेसाह।।

आज देवलायों में घण्टे नहीं बज रहे हैं। और शहंशाह भय नहीं मानता है। (अत:) हे मिर्जा राजा जयसिंहजी! एक बार फिर आवो।

यह पीछोला जोधपुर के महाराजा जसवन्तसिंहजी ने जयपुर के राजा जयसिंहजी के लिए कहा था। जयसिंहजी बड़े नामी साहित्यसेवी राजा थे।

✻ ✻ ✻

किसी कवि ने खेतड़ी (शेखावाटी अन्तर्गत) नरेश अजीतसिंहजी के लिये एक पीछोला कहा है। अजीतसिंहजी के लिये विवेकानन्दजी ने लिखा था कि यदि अजीतसिंहजी न होते तो मैं जो हूँ वह नहीं हो सकता था। कारण,

इन्होंने ही विलायत वगैरह भेजने में और अन्य आर्थिक सहायताएँ की थीं। पीछोला यह है –

कवि क्यों जावो खेतड़ी, अजो भूप नहीं आज।
राम मुसाहिब रमो गया, गयो बलो कविराज।।

हे कवि अब खेतड़ी जाकर क्या करोगे? आज राजा अजीतसिंहजी नहीं रहे हैं। शेष रामनाथजी जैसे मुसाहिब और बलवंतजी जैसे कवि भी चले गये हैं।

✻ ✻ ✻

धार (मालवा) के जगदेव परमार के लिये एक पीछोला कहा है। जगदेव परमार सिद्धराज के यहाँ अपनी संकटावस्था में नौकर हो गया था। एक दिन देवी के मंदिर में दैविक शक्तियों के आगे सिद्धराज के जीवनदान के हेतु अपना ही सिर काट कर देवी की भेंट चढ़ा दिया। यही नहीं, अपनी धर्मपत्नी और अपने पुत्र के सिर भी स्वामिभक्ति के लिए चढ़ा दिये थे।

धिन धारा धिन तों धणी, धिन राणी चहुवाण।
जिण री कूँख जलम्मियो, सीस दियो सुरताण।।

हे धारा नगरी ! तुझे और तेरे स्वामी (जगदेव का पिता) को धन्य है। चौहानवंशीय राणी को भी धन्य है जिसकी कोख से जन्मे सुरताण (जगदेव) ने अपना शीश दानस्वरूप दे दिया।

नोट – सुरताण परमारों का एक गोत्र है।

✻ ✻ ✻

यह पीछोला श्री लक्ष्मणसिंहजी अडूका का लिखा हुआ है –

अरी, ओ निलज्ज धरा अजलो तूँ फटी क्यों न,
क्यों न निलज्ज सिन्धु तूँ बर्फ बण जम गयो।
नर्क के अधम्म कीट फण से उतार धरा,
अजाँ तू जाण्यो ना रमण हाळो रम गयो।।
भाण क्यों उदय होत इच्छ्या ना प्रकाशहू की,
है प्रकाश देख्यो वेंरो जेने ले जम गयो।
दूजाँ ही न दोष कांई हिवड़ो ही फाटे ना,
कैलास को नूर हाथ आइके गम गयो।।

अरी ओ निर्लज्ज धरती ! अभी तक तू क्यों नहीं फटी? हे निर्लज्ज सिन्धु! तू बर्फ बनकर क्यों न जमा? नर्क के अधम कीट (शेषनाग) अपने

मस्तक से पृथ्वी को उतार दे–क्या तुझे मालूम नहीं कि खिलाड़ी खेल–खेल चुका। हे रवि ! तूं क्यों उदय होता है–प्रकाश की इच्छा नहीं रही क्योंकि जिसे यम ले गया उसी का ही प्रकाश हमने देखा था। दूसरों को क्या दोष दें, यह ह्रदय भी कैलाश जैसे कोहिनूर हीरे के साथ में आकर गुम जाने पर भी फटा नहीं।

✻ ✻ ✻

खरवा नरेश गोपालसिंहजी एक आदर्श साहसी और कर्तव्यनिष्ठ पुरुष थे। राजस्थान का बच्चा–बच्चा उनके नाम से परिचित होगा। उनका देहान्त कुछ वर्ष पहले हुआ था। उनकी मृत्यु पर यशकरणजी ने कुछ पीछोले लिखे हैं–

खरवा वाळी खोह रो, बीत गयो वो बाघ।
शूरापण साहस तणो, अब कुण करसी आघ।।

खरवा वाली गुफा का सिंह बीत गया। अब वीरता और साहस का आदर कौन करेगा।

गूजरियो गोपाल, विधवा रजपूती वणी।
होसी कवण हवाल अब इण राजस्थान रो।।

गोपाल गुजर गया है और रजपूती विधवा बन गई है। अब इस राजस्थान का क्या हाल होगा?

गोपाळा हिय घाव, थारा विन कोजो थियो।
एकरस्यां फिर आव, भारत रो करवा भलो।।

हे गोपालसिंहजी! तेरे विरह के कारण हमारे ह्रदय में घाव हो गया है। भारत का भला करने के लिये एक बार फिर आ जाओ।

✻ ✻ ✻

स्वामी लाडूनाथजी जोधपुर के सुप्रसिद्ध महाराजा मानसिंहजी के समकालीन थे। उनकी प्रतिष्ठा सर्वतोमुखी थी और महाराजा साहब भी उनका आदर करते थे। उनकी मृत्यु पर किसी दु:खी कवि ने बड़े कोमल शब्दों में कहा है–

कवियाँ करो कतार, हळ खड़ियाँ सधसी हमैं।
हाथ्याँ बगसणहार, मारग लागो लाडुवो।।

हे कवियो ! अब कतार ला दो। अब तो हल चलाने से ही गुजारा हो सकेगा क्योंकि हाथियों का दान देने वाला लाडुवा अपनी राह गया।

कितने सीधे सादे शब्दों में ही दु:ख के पुञ्ज को किस कौशल से व्यक्त किया है। सोरठे की वेदना ह्रदय के अन्तरतम स्थान को छू देती है। राजस्थानी साहित्य की ऐसी उक्तियाँ अमर सम्पत्ति हैं।

कागां धवला केस, हथणी जाया हळ बहै।
जसथारो जौगेस, लाखों कोसां लाडुवा।।

कौओं के भी श्वेत पाँखें हैं हथिनी पुत्र (हाथी) हल चलाते हैं। (इस तरह का) तेरा यश हे लडुवा! लाखों कोसों तक फैला हुआ है।

ऐसे दानी और ऐसे सज्जन की मृत्यु पर कवि अपने ह्रदय को ही दु:खी नहीं पाता बल्कि वन के मूक पशु–पक्षियों को भी लाडूनाथजी के विरह दु:ख से दु:खी पाता है। वह कहता है –

करकै कोयलियांह, मन्दरा बोलै मोरिया।
जोगी जोयलियाह, लाडू देवानाथ रा।।

कोयल कूक रही है और मोर मन्द–मन्द बोल रहे हैं। हे देवनाथ जी के शिष्य लाडूनाथजी तुम्हारा वियोग सबको सता रहा है।

यहाँ तक ही नहीं कवि तो वन के चेतन प्राणियों को छोड़कर पदार्थों में भी दु:ख के चिह्न प्राप्त करना चाहता है। जब उनमें कोई चिह्न नहीं प्राप्त होता है तो ललकार कर कहता है –

चँपला तें माँ चूक, अजे ज लीलो वाग में।
गयो क्यों नहीं सूक, सरगे सिधाये लाडुवो।।

हे चम्पे के पौधे ! तुम में कुछ अपूर्णता है क्योंकि तू अभी तक वाटिका में हरा ही खड़ा है। लाडूनाथजी स्वर्ग चले गए अब तक तू क्यों नहीं सूख गया?

कवि की इस भावुक रसमय उक्ति का एक जड़वृक्ष क्या उत्तर देता, अत: कवि आखिर लाडूनाथजी से ही प्रार्थना करता है –

विरँगा लागै वाग, मगसा लागै मोरिया।
जोगी हे तू जाग, दरसण दे देवाहरा।।

तेरे बिना आज बाग बिरंगे हो रहे हैं और अट्टालिकायें शून्य पड़ी हैं। देवनाथजी के लाडूनाथजी! तू योगी होकर जाग और दर्शन दे।

इसके सिवाय एक भावुक कवि और क्या कह सकता है? उसका कथन तो बेबस का आर्तनाद है।

✻ ✻ ✻

गुढा नगर (मालानी) के राणा खीमसिंहजी अपने न्याय व दान के लिये विख्यात थे। मालानी जोधपुर का एक परगना है। इन राणा की मृत्यु पर एक कवि ने लिखा है –

अमरापुर अड़बी भई, सुराँ न लाधो न्याय।
तेड़ो राणै खीम नै, निरणै करसी न्याय।।

स्वर्ग में एक बार गड़बड़ी हो गई और देवताओं के लिये कोई न्याय करने वाला न था। तब उन्होंने कहा राणा खीमसिंह को बुलाओ वह प्रात: काल ही उठकर न्याय कर देगा।

✻ ✻ ✻

बाड़मेर (जोधपुर) की कोटड़ी पबावत, के नामी सज्जन विशनसिंहजी शेरसिंहोत के लिये एक पीछोला कहा गया है –

हींसै हेवरियाँह, कै मन्दरा बोले मोरिया।
सब ब्रन्न पांगरियाह, विसन पधारो कोटड़ी।।

घोड़े हिनहिना रहे हैं और मोर क्रन्दन कर रहे हैं क्योंकि आज उन्हें तुम दिखाई नहीं दे रहे हो। हे विशनसिंहजी! अब तो कोटड़ी (बैठक) में चलो आज जबकि सब वन हरे भरे हो गये हैं।

✻ ✻ ✻

यह पीछोला रामजी जाखड़ (जाट) के लिये एक कवि ने कहा है। रामजी गाँव धारासर के रहने वाले थे। धारासर जोधपुर के बाड़मेर परगने में है।

कासी पोकर जात, आबू पर सेवा अटल।
वनरावन रो वास, राज करै छै रामजी।।

काशी और पुष्कर की यात्राओं, आबू पर अटल सेवाओं और वृन्दावन के निवास के कारण आज रामजी राज्य कर रहे हैं (स्वर्ग में)।

✻ ✻ ✻

यह पीछोला भी अमरा पोटलिया (जाट) के लिये कहा गया है जो जोधपुर के बाड़मेर परगने के चवा गाँव का रहने वाला था।

अमरा अन्धारोह, पोटलिया कीधो परो।
पाछा पद्धारोह, मुकनावत इण मुलक में।।

हे अमरा पोटलिया! तूने अंधेरा कर दिया। हे मुकने के सुपुत्र! तुम वापिस इसी देश में आओ।

✻ ✻ ✻

निम्नलिखित तीन पीछोले चिमजी नामक एक राजूपत सरदार के लिये कहे गये हैं। इनके पिता का नाम हमीरसिंहजी था। यह बहुत सुशील और सत्पुरुष थे। परोपकार में लीन रहना इनकी आदत थी और भाईयों में अपनी हानि रहते हुए भी कभी असंगठन न होने दिया। इसके भाईयों (बलवंतसिंहजी, रणजीतसिंहजी) के आपसी संगठन को देखकर एक राजस्थानी कवि ने बड़े अच्छे शब्दों में एक दोहा कहा है –

तारां में ससिहर तपै, भायां चिमजी भाण।
हेत घणो हम्मीर सुत, जैरे प्रब बेहु मेर प्रमाण।।

इन्हीं चिमजी की मृत्यु पर कवि ने बहुत दुखित होकर कुछ पीछोले कहे हैं –

इळ पर अन्धाराह, कमधज तो चिमजी कियो।
पाछा पध्धारोह, मिळण पधारो महपती।।
विदरां पूछूँ वात, कहो चीमजी गया कठै।
अमरापुर अे वास, राज करै छै राजवी।।

हे विद्वानों! तुमसे एक बात पूछता हूँ। यह बताओ कि चिमजी कहाँ गये?

उत्तर– वह राजवी अमरापुर (स्वर्गपुरी) में राज्य कर रहे हैं।

कवि ने कल्पना पर अपनी भावुकता और भोली जिज्ञासा का कितना सुन्दर प्रतिबिम्ब खींचा है।

वाट जोऊं जुग च्यार, भव-भव तो भूलूँ नहीं।
अेकर मिळवा आव, हाथां चिमा हमीर रा।।

चारों युगों तक मैं तेरे आने की बाट देखूंगा और जन्म-जन्म तक तुम्हें नहीं भूलूंगा। हे हमीरसिंहजी के पुत्र चिमजी! एक बार अभी मिलने आओ।

इस सोरठे में भी कवि ने अपनी लेखनी को सम्पूर्ण माधुर्य दिया है। कवि का आशावाद प्रथम पंक्ति में हृदय-ग्राही है। चार-चार युग तक राह देखना हृदय में कितनी सहानुभूति और वेदना का उत्पादन करता है। यही नहीं 'जन्म-जन्म तक नहीं भूलूंगा'-क्या कोई साधारण बात है?

✻ ✻ ✻

बाड़मेर के पूंजराजजी और रावत पनजी पर भी कवियों ने दो पीछोले कहे हैं –

जाळीपै री जाळ, बोलै नी बुध बायरी।
(अठै) पूजो नैं पनराज, अेस करण कद आवसी।।

हे बुद्धिविहीन जालीपे की जाल! तू क्यों नहीं बतलाती कि यहाँ पर पूंजराजजी और पनजी ऐश आराम करने कब आवेंगे?

पाठक देखेंगे कि इस सोरठे में वही भाव हैं जो रामचन्द्रजी के हृदय में था। रामचन्द्रजी ने सीता की खोज करते हुए कहा था–

''हे खग मृग हे मधुकर श्रेनी, तुम देखी सीता मृगनैनी''

रामचन्द्रजी ने तो खग, मृग और मधुकरों से सीता का पता पूछा था लेकिन राजस्थान का कवि यह सब कहाँ से लाता? तब उसने जाल जैसे वृक्ष से ही प्रश्न पूछ लिया। कविता देश व काल न छोड़े, ऐसा विद्वानों का मत है। इसी भाँति इस दोहे में भी राजस्थानी कवि राजस्थान की जाल को छोड़कर 'मधुकर श्रेनी' से प्रश्न करने नहीं जाता।

काती करसण नीपजै, तद ही कूँता त्यार।
राज पधारो, राजवी, सज धोळो सिणगार।।

कार्तिक मास में कृषि पक जाती है तभी कुँता तैयार रहते हैं। हे राजवी! श्वेत वस्त्रों से विभूषित होकर अपने राज्य में आवो!

कूंता–जागीरदार प्रजा के धान को देखकर अनुमान लगाता है, उस क्रिया को कूंतना कहते हैं। कूंत शब्दों का प्रयोग देखिये –

खळ गुळ अण कूंताह, अेक भाव कर आदरै।
उण नगरी हूंताह, रोही आछी राजिया।।

तथा –

कुन्नण पीतळ कूंत, अेक भाव कर आदरै।
है उण ठाकर हूंत, भाखर सखरा भेरिया।।

✻ ✻ ✻

शेखावाटी के ठिकाने चौकड़ी के ठाकुर साहिब श्री गोपालसिंहजी थे, जिन्होंने अपने अधिकारों की रक्षा के लिये जयपुर स्टेट से भी लोहा लिया था। व्यक्तिगत रूप से वे अत्यन्त भद्रपुरुष थे और मिलनसार भी थे। उक्त ठाकुर साहब के लिये निम्नलिखित पीछोला कहा गया है –

शेखाटी री ढाल, साल शत्रुवण शेखवत।
गयो सुरग गोपाल, हाय–हाय लाधै कठै।।

वे शेखावाटी की ढाल थे (अर्थात् शेखवाटी को नष्ट होने से बचाने वाले थे) और शेखावतों के शत्रुओं के बैरी थे। वही गोपालसिंहजी अब स्वर्गधाम चले गये। हाय अब कहाँ पर मिलेंगे।

✻ ✻ ✻

राजस्थान में बारहठ केसरीसिंह का स्थान एक कवि और निर्भीक वक्ता की हैसियत से बहुत ऊँचा है। उनका लिखा हुआ 'चेतावणी रो चूँघट्यो' यद्यपि 13 दोहों का ही है लेकिन उनमें ऐसी शक्ति थी कि जिसने फतहसिंह–महाराणा को मेवाड़ के गौरव से च्युत होने से बचा दिया। लार्ड कर्जन ने 1911 में दिल्ली में दरबार बुलाया और सभी देशी राजा आये। लेकिन महाराणा फतहसिंहजी स्वतंत्रता के उस अमर पुजारी राणा प्रताप की संतान अपने देश मेवाड़ के गौरव को खण्डित करे, यह केसरीसिंहजी जैसे देशभक्त को कैसे सहन होता। उन्होंने केवल 13 दोहे लिखकर महाराणा को स्पेशल ट्रेन में भिजवा दिये। महाराणा ने कहा कि अफसोस यह दोहे मुझे वहीं मिल जाते तो उदयपुर से रवाना ही नहीं होता लेकिन दिल्ली पहुँचते ही गाड़ी को वापिस रवाना करके उदयपुर चलने का हुक्म दिया। दरबार में लार्ड कर्जन महाराणा की कुर्सी देखता ही रह गया। पाठकों के अवलोकनार्थ दो–तीन दोहे यहाँ दिये जाते हैं –

पग पग भम्या पहाड़, धरा छोड़ राख्यो धरम।
महाराणाऽर मेवाड़, हिरदै बसिया हिन्द रै।।
सिर झुकिया सहसाह सींहासण जिण सामनै।
(ब) रळणोपंगत राह, फाबै किम तौनै फता।।
देखै अंजस दीह, मुलकैलो मन ही मना।
दम्भी गढ़ दिल्लीह, शीश नमन्तां शीशवद।।

उक्त ठा. केसरीसिंहजी का निधन राजस्थान की सम्पत्ति की हानि थी। उस निर्भीक वक्ता और राजस्थान के लाड़ले सपूत के दु:ख में कवियों ने बड़े करुणा–उद्गार प्रगट किये हैं जिनके कुछ उदाहरण निम्नलिखित हैं –

केहरियो हो केहरी, भल रजवाड़ां वीर।
चारण जाति में चतुर, धरां किणी विध धीर।।
महिपत नीको मानता, आदर करता आय।
कठै गयो अब केहरी, लांबो दुक्ख लगाय।।
सुणता हा म्हे साचली, केहरी मुक्ख खरीह।
आख्खै कुण कलियाण, अब बाणी जोस भरीह।।

केसरीसिंह सिंह के समान राजस्थानी रियासतों के वीर थे। वे चारण जाति में चतुर थे, अब किस प्रकार धीरज रखें? राजा लोग उन्हें अच्छा मानकर उनका आदर करते थे लेकिन केसरीसिंहजी अब लम्बा दुःख लगाकर कहाँ चले गये? हम केसरीसिंहजी के मुख से सच्ची व खरी बात सुनते थे लेकिन अब वैसी जोश भरी वाणी कौन सुनावे?

उपर्युक्त तीनों पीछोले ठा. कल्याणसिंह शेखावत गांग्यासर के लिखे हुए हैं।

विधना कियो अकाज, गाज परो तव काज पै।
आई रंच न लाज, हरतां जग सूं केहरी।।

विधि ने यह बुरा काम किया जबकि कार्य पर वज्र गिरा। विधि को संसार से केसरीसिंहजी को हरते तनिक भी लज्जा नहीं आई। यह पीछोला ठा. मनोहरसिंहजी का लिखा हुआ है।

सरर वीत्यौ सुख समय, दुःख उमग्यो दिल दाज।
वे हर लीधो रतन नर, अरर केहर आज।।
सिर रो सेहरियोह, कवि चारण कुल माँयलो।
कोविद केहरियोह, हाय स्वर्गवासी हुओ।।
परण पोखन्तोह, जोखन्तो निज जातनै।
केहर कोसन्तोह, सोची क्यूँ नहिं सांवरा।।

सुख का समय शीघ्रतापूर्वक बीत गया और दुखाग्नि हृदय में उमड़ उठी। विधि ने हाय! रत्नश्रेष्ठ केसरीसिंह को हर लिया।

चारण कुल के कवियों के सिरमौर चतुर केसरीसिंहजी हाय! आज स्वर्गवासी हुवे। अपनी जाति को सदा पोषित व उन्नत बनाते थे, ऐसे केसरीसिंह को संसार से छीनते हे साँवरे (परमात्मा) तुम्हें लज्जा ही न आई।

हाकल खतवट देश, बोलि वीरता रा वचन।
देसी कुण उपदेश, कड़वा तो बिन केहरी।।
झूँठा झूघटियाह, असर हुवै किम अधपत्यां।
चुभता चूँघटियाह, कुण ले तो बिन केहरी।।

रजवट देश को वीरता भरी वाणी से ललकार कर उपदेश हे केसरीसिंह तुम्हारे बिना अब कौन देगा ?

अब झूठे वचनों से अधिपतियों पर किस प्रकार असर पड़ सकता है? तुम्हारे बिना अब ''चुभते चूंघटिये'' कौन भरे ?

❁ ❁ ❁